परिशिष्ट-प्रातरग्नीन्द्रसूक्त-सहिता

चतुर्वेदीयसंध्या

भाषाटीकासमेता

ग्रंथकर्ताः

स्वामी शंकरानंदगिरि।

प्रकाशकः

ळानिवासी याज्ञिक (जानी)

ळ गुणवन्तराम, बी. ए. जी।

हरद्वारमें अधिकारी द्विजोंके लिये धर्मार्थ

सम्वत् १९९४] [शक १८५९

प्रति २०००

चतुर्वेदीयसंध्या

भाषाटीकासमेता

ग्रंथकर्ता:

स्वामी शंकरानंदगिरि।

प्रकाशक:

राजपीपलानिवासी याज्ञिक (जानी)

जयन्तिलाल गुणवन्तराम, बी. ए. जी।

कुंभमेला हरद्वारमें अधिकारी द्विजोंके लिये धर्मार्थ

सम्वत् १९९४] [शक १८५९

प्रति २०००

प्रस्तावना

योधपुरराज्यान्तर्गत, आऊवा संस्थाननिवासि, भरद्वाजगोत्रोत्पन्न औदिच्य ब्राह्मण, शरगाणी, आत्मारामशर्मा पिता और धूलीदेवी माता है जिसकी ऐसी धर्मजिज्ञासु रंगुदेवीने प्रश्न किया–"द्विजातिमात्र उपनयन संस्कारसे युक्त होकर, संध्याके सहित गायत्रीमंत्रको जपते हैं, गायत्री–संध्याहीन द्विज पतित होता है, और जपसे उत्तम गति पाता है, गायत्रीसंध्यामें ऐसा महत्त्व है, जो सब मंत्र और स्तोत्रोंमें उत्तम है, उस गायत्री और संध्याकी महिमाको भाषाटीका करके छपाओ"॥ इन प्रश्नोंके उत्तर देनेके लिये, मैंने प्रथम परिशिष्ट लिखा है, उसमें गायत्री, प्रणयका देवता, तथा श्रेष्ठता, वेदस्मृति पुराणोंके आधारपर लिखा ह, और परिशिष्टके पीछे प्रातःसूक्त, अग्निसूक्त तथा इन्द्रसूक्त भाषाटीकासहित नियुक्त हैं ॥ उन सूक्तोंके पीछे भाषाटीकासहित चारों वेदोंकी सन्ध्यायें क्रमसे रखी गयी हैं, उन संध्याओंमें वैदिक आचमन, हृदयपवित्रीकरण, आसन, गायत्री आवाहन आदि कर्म वैदिक विधिसे लिखा है ॥ मैं आशा करता हूँ के; द्विजातिगण इन वैदिक संध्याओंसे अवश्य लाभ उठावेंगे॥

निवेदकः

मार्गशीर्ष १५ दत्तजयन्ति
वि. सं. १९९४

स्वामी शंकरानंदगिरि,
श्रेयःसत्र–मु. पोष्ट राजपीपला.
वाया अंकलेश्वर (गुजरात)

मुद्रकः—एस्. व्ही. परुलेकर, बंबईवैभव प्रेस, गिरगाम, बंबई।

प्रकाशकः—राजपीपलानिवासी याज्ञिक (जानी) जयन्तिलाल गुणवन्तराम, बी. ए. जी।

अ. सौ. श्रीमती रंगुदेवी.

The Indian Art Press, Bombay, 2.

परिशिष्ट—संध्याकी संकेतसूची

म. भा.=महाभारत
वा. रा.=वाल्मीकिरामायण
मै. शा.=कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणी शाखा
कपि. शा.=कृ. यजु. कपिष्ठल कठशाखा
काठक शा.=कृ. यजु. काठक शाखा
तै. शा.=कृ. यजु. तैत्तरीय शाखा
काण्व शा.=शुक्लयजुर्वेदीय काण्व शाखा
मा. शा.=शुक्लयजु. माध्यन्दिनी शाखा
तै. ब्रा.=तैत्तरीय ब्राह्मण
ऐ. ब्रा.=ऐतरेय ब्राह्मण
श. ब्रा.=शतपथ ब्राह्मण
शां. ब्रा.=शांख्यायन ब्राह्मण
तां. ब्रा.=ताण्ड्य ब्राह्मण
ष. ब्रा.=षड्विंशब्राह्मण
ऐ. आर.=ऐतरेय आरण्यक
शां. आर.=शांख्यायन आरण्यक
तै. आर.=तैत्तरीय आरण्यक
तां. आर.=तांड्यआरण्यक
जै. आर.=जैमिनीयआरण्यक
अ.=अथर्ववेद
गो. ब्रा.=गोपथ ब्राह्मण
कौ. शा.=सामवेदीय कौथुमी शाखा
कौ. आर.=कौषीतकि आरण्यक
बृ. उ.=बृहदारण्यकउपनिषद्
ऋग्.=ऋग्वेद
मनु.=मनुस्मृति
पू. मी.=पूर्वमीमांसा
उ. मी.=उत्तर मीमांसा
यो. सू.=(पातञ्जल) योगसूत्र
पा. सू.=पाणनीयसूत्र
आ. परि.=आपस्तम्ब परिभाषा
आप. धर्मसू.=आपस्तम्ब धर्मसूत्र

॥ चतुर्वेदीय संध्याकी अनुक्रमणिका ॥

परमहंस परिव्राजक स्वामीश्री शंकरानन्दगिरि.—राजपीपला.

Indian Art Press, Bombay, 2.
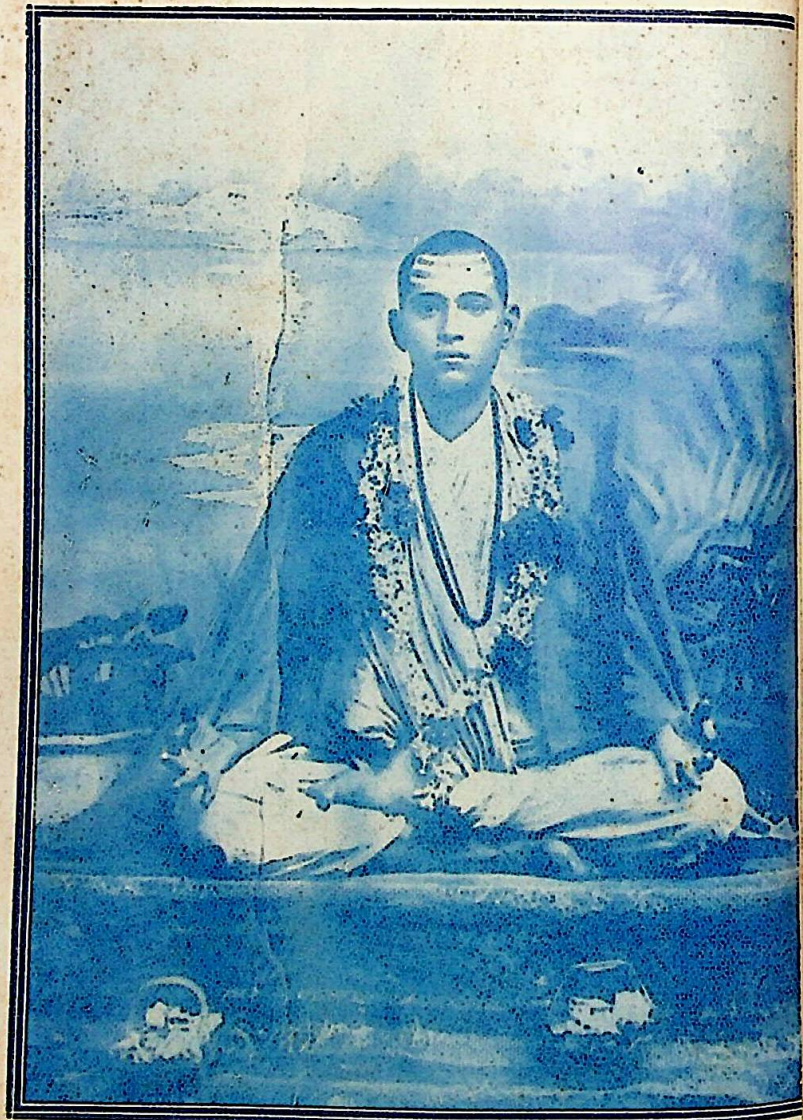
॥ चतुर्वेदीय-संध्या ॥

॥ परिशिष्टम् ॥

ॐब्रह्माणमीशं परमेष्ठिनञ्च प्रजापतिं पूर्णमनादिदेवम् ॥
दैत्यामरैः सेवितपादपद्मं नमामि धातारमनेकरूपम् ॥ १ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ॥
तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥व्यासस्मृतिः॥१।४॥

वेद, स्मृति, पुराणोंका जिस किसी वर्णाश्रमके धर्मविषयमें परस्पर-विरोध होवे, तो उस विषयमें वेदही प्रमाण है, और स्मृतिपुराणका विरोध होवे, तो मनु आदि स्मृति प्रमाण है ॥

सर्वे शब्दाः सर्वार्थवाचकाः ॥ शब्दप्रमाणका वयम् । यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम् ॥ महाभाष्यम् ॥

सब शब्दमात्र सब अर्थवाले हैं ॥ किन्तु हम वैदिक प्रजा वेद प्रमाण माननेवाले हैं। जो कुछभी वेदने कहा है सो सबही हम लोगोंका प्रमाण है ॥

धर्मस्य शब्दमूलत्वादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात् ॥ पू. मी. १।३।१॥

मनुष्यके कितनेही सुन्दर वाक्योंसे रचे हुये सब ग्रन्थ उन्माद, प्रलाप आदि दोषोंके कारण होनेसे त्याग करने योग्य हैं, धर्मके विषयमें वेद मुख्य प्रमाण होनेसे मानने योग्य हैं, और वेदविरोधि ग्रन्थ त्यागने योग्य हैं ॥

विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम् ॥ पू. मी. १।३।३॥

इस सूत्रपर कुतूहलवृत्ति—

प्रत्यक्षश्रुतिविरोधे सति अनपेक्षं श्रुतिवाक्यमेव प्रमाणं स्यान्न तु स्मृतिवाक्यम् ॥

जिनग्रन्थोंमें प्रत्यक्ष वेदसे विरोध होवे, उसमें वेदवचनही प्रमाण है, वेदाविरुद्ध स्मृति मान्य नहीं है।

उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम् ॥ पू. मी. १।१।२९ ॥

महेश्वरने ब्रह्माके हृदयमें वेदप्रेरणा किया सोही प्रथम वेदवाणी ब्रह्माके मुखसे प्रगट हुई; वहा वाणी नित्य वेदरूप अपौरुष वाक्य अनादि है॥

अतएव च नित्यत्वम् ॥ उ. मी. १।३।२९ ॥

मनुष्यकृत न होनेसेही यह वेद अनादि महेश्वरका ज्ञान है ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ श्वे. उ. ६।१८ ॥

जिस रुद्रने सबके पहिले ब्रह्माको प्रगट किया, उसी रुद्रने उस ब्रह्माके लिये वेदोंका उपदेश किया ॥

ब्रह्मा हि परः परो हि ब्रह्मा ॥ तै. आर. १०।७८ ॥

ब्रह्माही महेश्वर है और महेश्वरही ब्रह्मा है ॥

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥ मनु. १।२१॥ भृगु. १।२१ ॥ महाभारत १२।२३२।२६ ॥

उस महेश्वरने ब्रह्मरूपसे, वेदमंत्रोंमें समस्त पदार्थोंके नामरूपको दिखानेवाले नामोंकी प्रथम कल्पके समानही रचना किया ॥

अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टाः स्वयम्भुवः ॥ म. भा. १२।२३२।२४ ॥

सनातन ज्ञानमय वेदवाणीको ब्रह्माने रचा ॥

स्तुत्यर्थमिह देवानां वेदाः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ म. भा. १२।३२७।५० ॥

ब्रह्माने अग्नि इन्द्रादि देवताओंकी स्तुति करनेके लिये वेदोंको रचा ॥

तेन प्रोक्तम् ॥ पा॰ सू॰ ४।३।१०१ ॥

इसपर महाभाष्य—

नित्यानि छन्दांसीति यद्यप्यर्थो नित्यो या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा नित्या ॥ तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं, कालापकं, मौदकं, पैप्पलादकमिति ॥

उस ब्रह्माके द्वारा महेश्वरने वेद कहा हुआ छन्दरूप ऋचा नित्य है और मंत्रोंका अर्थ भी नित्य है, इस प्रकार होनेपर भी वर्णानुपूर्वी अनित्य है, उस भेदसेही काठक, कालापक, मौदक, पिप्पलादक आदि शाखाभेद हो गये हैं ॥

सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचकाः ॥ पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा ॥ प्रजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः ॥ वायु पु. ६१।५९-७५ ॥

उस ऋग्-यजु-साम-अथर्व-मय चार स्वरूपकी ग्यारहा सौ इकतीस शाखायें हुई, उन शाखाओंमें पाठांतरोंके सिवाय दुसरा भेद कुछ भी नहीं है. जैसा मंत्रद्रष्टाको मंत्र भासा, उस प्रकारही पाठ हुआ, सोही मंत्र अन्य ऋषिके हृदयमें भासा वही पाठान्तर है. जैसे काण्व शाखाका विजुगुप्सते, और माध्यन्दिनी शाखाका विचिकित्सति, पाठान्तरभेद होनेपर भी अर्थ एकही है. इसलियेही भेद अनित्य है और अर्थ नित्य है॥ ब्रह्माकी रची हुई ऋचायें नित्य है तथा शाखारूपसे विकल्पमात्र अनित्य है॥

द्वादश बृहती सहस्राण्येतावत्यो हर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः ॥ शतपथब्राह्मण १०।४।२।२३॥

ब्रह्माने बृहती छन्दकी संख्यासे जिन ऋचाओंकी संख्या बारह हजार रची वे सबही इतनी हैं ॥

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावद्धि तत् ॥ ऋग् १०।११४।८॥

जितनी महिमा स्वर्ग ओर भूमी की है उतनीही महिमा गायत्री छन्दकी

संख्यासे पन्द्रह हजार मंत्रोंकी है. अर्थात् इनमंत्रोंके पठन पाठनसे चतुर्दश भुवनोंमें सिद्ध गतिसे विचरता हुआ ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

अनन्ता वै वेदाः ॥ तै. ब्रा. ३।१७।११ ॥

ब्रह्मारचित मंत्रोकी शाखा के भेदसे वेद अनन्त है ॥

नेन्द्रियाणि नानुमानं वेदाह्येवैनं वेदयन्ति ॥ तस्मादाहुर्वेदा इति ॥ पिप्पलादश्रुतिः ॥

यह श्रुति लुप्त हुइ पिप्पलाद खिलकी है ॥ नेत्र, मन आदि इन्द्रियें और अनुमानादि प्रमाण जिस स्वर्ग आदि ब्रह्मलोकमें नहीं पहुँचते उस अलौकिक अदृष्ट उपायको वेदही जानता है. इसलियेही वेदका वेदपना है॥

नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम ॥ तै. ब्रा. ३॥१२।९।७॥

उस रुद्रको वेदरहित मनुष्य नहीं जानता है ॥

यस्तित्याजसचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपिभागो अस्ति ॥ यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ऋग्. १०।७१।६॥

जो त्रिवर्ण द्विजातिमात्र वेदरूप मित्रको त्याग देता है, उस द्विजबन्धु की लौकिक मनुष्यरचित ग्रन्थमयी वाणीसे परलोकके लिये कुछ भी फल नहीं है. वह जो कुछ पठन पाठनके सहित श्रवण, मनन, निदिध्यासन करता है सो सबही व्यर्थ परिश्रम कर्ता हुआ सुनता है. सो सत्कर्मका मार्ग नहीं जान सकता। अर्थात् स्वर्ग मोक्षको नहीं प्राप्त होता है ॥

नकिर्देवामिनीमासिनकिरायोपयामसि मंत्रश्रुत्यं चरामसि ॥ पक्षेभिरपि कक्षेभिरत्राभिः संरभामहे ॥ ऋग्. १०।१३४।७॥

मंत्रद्रष्टा नचिकेताने कहाः—हे देवताओ। तुह्मारे विषयमें हम यजमान कुछ भी त्रुटि नहीं करते. किसी भी कर्ममें देरी तथा अश्रद्धा भी नहीं करते. मंत्रभाग और ब्राह्मणभागके अनुसार हम आचरण करते हैं. दोनों हाथोंसे इकठी यज्ञसामग्री लेकर इस स्वर्गीय सोपान मार्गरूप यज्ञ-कर्मका हम सम्पादन करते हैं ॥

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ॥ आपस्तम्बपरिभाषा १।३३॥
मंत्र और ब्राह्मणभागका नाम वेद है ॥

तदेतद्ब्रह्म प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः ॥ ताण्ड्य-आरण्यक ३।४।११॥

उस प्रसिद्ध नित्य वेदज्ञान का उपदेश ब्रह्माने विराट् अभिमानी प्रजापतिको कहा, प्रजापति अथर्वाने मनुको कहा और स्वायम्भुव मनुने अपनी देव, दैत्य, पितर, मनुष्यादि प्रजाओंके लिये उपदेश किया ॥

वेदविद्वेद भगवान् वेदाङ्गानि बृहस्पतिः ॥म.भा.१२।२१०।२०॥
भगवान् ब्रह्माने वेद रचे और बृहस्पतिने वेदाङ्ग रचे ॥

यद्वै किञ्च मनुरवदत्तद्भेषजम् ॥ तै० शाखा २।२।१०।२ ॥
जो कुछ भी मनुने प्रजाके लिये वैदिक धर्म कहा है सो सबही सुखरूप है ॥

य एव मंत्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति ॥ न्यायसूत्र ४।१।६२ ॥

वात्स्यायनभाष्यमें चरकब्राह्मण का प्रमाण है जे भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषि मंत्रभाग और मंत्रभागके कठिन अर्थरूप ब्राह्मण, भागके द्रष्टा हैं वेही इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रके भी प्रवक्ता है

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनाम् ॥ अथर्वण १५।६।१२ ॥

वेही ब्राह्मणभागके आठ भेद करनेवाले है (मत्स्य आदित्यसम्वादही इतिहास है॥ सृष्टि आदिका वर्णन और मनु आदिका वर्णनही पुराण है॥ देव अप्सरा आदिका नृत्य गीतही विद्या है॥ प्रिय आत्माकी उपासनाही उपनिषद् है॥ ब्राह्मणभागमें संक्षिप्त श्लोकरूपसे वेदवचनही सूत्ररूप है॥ सूत्रोंका विवरणही अनुव्यान है॥ अग्नि की उपासनाही नाराशंसी

है ॥ देव, दैत्य, मनुष्य सम्बाद और युद्धका वर्णनही गाथा है वेही आठ भेद हैं) और कल्पसूत्र, धर्मसूत्र गृह्यसूत्रके रचनेवाले हैं ॥

उन्होके निवासस्थानके लिये भी कहा है जो वेदोंमें मुञ्जवान् (हेमकूट-हिन्दुकुश), गिरि (कैलास) आदि उत्तरवर्ती पर्वतोंका, और उत्तर कूरु (सायबेरीया), गन्धार (तातर—वलख—बुखारा-काश्मीर-काबुल—पिसोर-तक गंधार है), उत्तर मद्र (श्याल्यकोटसे लेकर जम्बुदेश, कष्टबाड, भद्रबाड, भूलेसा, चौरहा, चम्बेराज्य, कुल्लूदेशही उत्तरमद्र है), पूर्वमद्रके दो भेद केकय (लालामुषाकटास राजसे लेकर झेलम नदिके पार तक्षक शीलातकके केकयदेश है), और वीरसेन (रावी नदीव्यापी देश है) और अपर मद्र (मुलस्थान—मुलतान झङ्गके पास शाकल नगर है), कुरु-क्षेत्र, मारवाड, सौराष्ट्र (काठीयावाड, सोमनाथ, प्रभास), गंगा यमुना व्यापीदेश (पंचाल—रोहिलखण्ड और कुछक चण्वती (चम्बल) नदी-व्यापीदेश) कौसल, वेदहपर्यंत देशोंका नाम शतपथ और ऐतरेय ब्राह्म-णमें हैं ॥ जब मही (गुजरातवर्ती) नदी, कलिङ्गदेशकी नर्मदा, सौन, महा-नद, तमसा आदि नदीयोंका नाम ब्राह्मणग्रन्थोंमें भी नहीं है तो तापी, पयोष्णी (विदर्भ बराड), मयूर देश, आम्मलनेर, नन्दरबार, वारडोली, सूरत) वर्ती नदियोंका नाम कहाँ है ? ॥ फिर गोदावरी, कृष्णा आदि नदियोंका नाम कहाँ है ?॥ वैदिक पुराणोंसे भिन्न अष्टादश पुराणोंमें भाग-वतमें कृतमाला ताम्रवती नदियोंके नाम हैं, स्कन्दपुराणमें जगन्नाथमहिमा और तीनसौ वर्षके पुण्डरीकपुर (पण्ढरपुर महाराष्ट्रदेशमें) का माहात्म्य हैं ॥ इन बातोंसे सिद्ध हुआ-वैदिकपुराणसे ये भिन्न हैं और इन पुराणोंमें वैदिक धर्मकी छायाको आश्रय करके मुख्य वैदिक देव अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति आदिको गौण मानकर मनुष्योंमें महापुरुषोंको मुख्य देवता माना है । तथा मतोंका वर्णन है ॥

ये यज्ञेषु प्रोक्तव्यास्तेषां दैवत उच्यते ॥ सामवेदीयदेवता-ध्याय ब्राह्मण २ ॥

अश्वमेध-अग्निष्टोम—सोमयाग-चातुर्मास आदि यज्ञोंमें जिन इन्द्र प्रजा-पति आदि देवताओंका वषट्कारके द्वारा और स्वाहाकारसे सत्कार किया जाता है उनकोंही देवता कहा जाता है ॥ मनुष्य कितनाही महापुरुष क्यों न हो तो भी जन्ममरण धर्मी है उसके नामकी आहुतियें नहीं दी जाती हैं ॥

तान्पूर्वयानिविदाहूमहे ॥ ऋ. १।८९।३ ॥

उन इन्द्रादि देवताओंको अनादि वेदमंत्रके द्वारा हम यजमान बुलाते हैं॥

वेदशास्त्रद्वयं चैव प्रमाणं तत्सनातनम् ॥ म.भा.१२।३०५।७॥

मंत्रभाग और ब्राह्मणभाग ये दोनों अनादिकालसे प्रमाण माने जाते हैं॥

पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ॥ ऋग्. ७।२९।४ ॥

सनातन वेदोंकी स्तुति सुना है ॥ वहाँ पर ऋषिपद वेदोंका वाचक है ॥

एष पन्था एतत्कर्मैतद्ब्रह्मैतत्सत्यम् ॥ तस्मान्न प्रमाद्येतन्नातीयात् ॥ नह्यन्त्यायन्पूर्वे येऽत्यायस्ते पराबभूवुः॥ऐ.आर.२।१।१॥

यह वैदिक अनादि मार्गही सलोक और परलोक हितकारी है, वही कर्म—उपासना है, वही सत्य ज्ञानमार्ग है ॥ इस लियेही परंपरागत वैदिक मार्गमें शुष्क तर्क आदि प्रमाद न करे और उसका त्याग भी न करे; क्योंकि मुख्य चार गोत्रप्रवतक—भृगु, अङ्गिरा, वसिष्ठ, कश्यप, तथा उनकी सन्तान कवि, बृहस्पति, भरद्वाज, वामदेव, दधीच, आदिने भी नहीं त्यागा तो हम उन महर्षियोंकीही सन्तान हैं इस लिये हमे त्याग नहीं करना ॥ जिनोंने ब्रह्मदेवकी वैदिक मर्यादाका त्याग किया था वे सबही अनार्य और पशु, पक्षी, सर्प, मत्स्य, आदियोनियोंमें गिरकर महा दुःखरूप पराभवको प्राप्त हुए ॥

ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म ॥ अग्निर्देवता ब्रह्म इत्यार्षम्॥गायत्रं छन्दः परमात्मस्वरूपम् ॥ सायुज्यं विनियोगः ॥ तै० आर. १०।३३।१॥

ओंकार यह एक अक्षर ब्रह्म है इस प्रणव-तारक मंत्रका अग्निदेवता (रुद्रदेवता), ब्रह्मा इसका ऋषि, गायत्र छंद, उत्तम व्यापक स्वरूप, व्यष्टिउपाधिक जीवको समष्टिचेतनपुरुषमें अभेद स्वरूपसे जोड़े ॥

यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मंत्रेण याजयति वाऽध्यायपति वाऽस्थानं वर्षति गर्तं वा पद्यति वा प्रमीयते पापीयान् भवति ॥ आर्षेयब्राह्मण १ प्रपाठक ३ ॥

जैसे मेघ कुस्थान आर गड्डेमें वर्षता है वह जल खेतीके उपयोग नहीं है तैसेही मंत्रके ऋषि-छन्द-देवताके बिना जाने जो ब्राह्मण मंत्रसे यज्ञ करता और कराता है तथा वेदमंत्र पढता और पढाता है वह अति दुःख रूप मरणको पाता है और पापी होता है ॥ इस लिये प्रत्येक मंत्रका देवता, ऋषि, छन्द जानना चाहिये ॥

ते ओंकारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं ददृशुः ॥ लातव्यो गोत्रो ब्रह्मणः पुत्रो गायत्रं छन्दः शुक्लो वर्णः पुसो वत्सो रुद्रो देवता ओङ्कारो वेदानाम् ॥ गो० ब्रा० १।२३।२५ ॥

जैसे बीजसे वृक्ष, पुष्प, फल उत्पन्न हुआ भी उस फलमें बीजही अन्तमें रहता है तैसेही महेश्वर अपनी मायासे ब्रह्माण्डवृक्षको रचकर उसका अभिमानी ब्रह्मानामसे प्रसिद्ध हुआ. वह ब्रह्मा अपने द्युलोक मस्तकसे सूर्यमण्डलमय पुष्पको रचता है, उस पुष्परूप फल हृदयमें चेतनपुरुष-रुद्र-भर्ग आदि नामसे विराजता ह. ब्रह्माके बडे पुत्र ॐरूप-रुद्रको वे सब देवता देखने लगे. इस ब्रह्माके पुत्र ओंकारका लातव्य गोत्र, गायत्रछन्द, शुद्ध तुरीय वण, प्रियपुरुष रुद्र देवता है, यह ॐ वेदोका उत्पत्तिस्थान है ॥

आदित्योमूर्ध्नोऽसृज्यत ॥ तां० ब्रा० ६।९।१ ॥
ब्रह्माने सूर्यको अपने स्थूल विराट् देहके मस्तक द्यौसे रचा ॥

हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः॥ तस्योन्तरतः शिरो दक्षिणतः पादो य उत्तरतः स ॐकारो यः ॐकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो यो-

नन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्मेति स एकः स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् स महेश्वरः स महादेवः ॥ अथर्वशिरो० ४।१ ॥

देव रुद्रकी स्तुति करने लगे—हे रुद्र ! तुम सूर्यरूप हृदयमें स्थित हो. जो रुद्र नित्य तीन मात्रा, तीन अम्बक, तीन वेद, तीन प्राण, तीन लोक, तीन देव (अग्नि, वायु, सूर्य) है, उन तीन मात्राओंसे परे तुरीय है, उस रुद्रस्वरूपी प्रणवका दाक्षिणायन कर्ममार्ग पाद है तथा उत्तरायण मार्ग उपासनारूप शिर है ॥ यह उपासना सकाम्य स्वर्गरूप है और निष्कामनारूप ब्रह्मलोकगमन अपुनरावृत्ति है. कर्म—उपासना दो नेत्ररूप अ. उ. है और अभेद उपासनाही ज्ञानरूप तृतीय नेत्र है, इन तीनोंकी अभेद अवस्थाही चेतन तुरीय रुद्र है ॥ जो तीनोंकी समष्टि है सोही ॐ है, जो ॐ है सो प्रणव, जो प्रणव सो सर्वव्यापी, जो सर्वव्यापी सो अनन्त, जो अनन्त विराट् सो तार, जो तार—सूक्ष्मीकी अवस्था है सो सूक्ष्म, जो सूक्ष्म हिरण्यगर्भ है सोही क्रिया और कार्यरहित कारणशुक्ल है, जो अव्याकृत आकाश है सोही प्रकाशमयी अम्बिका है, जो अम्बिका है सोही अनन्ताकाश ज्ञानस्वरूप उमा है, इस ज्ञान और चेतनका जो अभेदरूप है सोही ॐस्वरूप है, जो एक अर्धनारीश्वर है सोही रूद्र है, जो रुद्र है सोही ईशान है, जो ईशान है सोही मायिक महेश्वर महादेव है ॥

असौ वा आदित्यो हृदयम् ॥ श. ब्रा. ९।१।२।४॥ ओमित्यादित्यः ॥ जैमिनीय आर. ३।१३।१२ ॥

यह सूर्यही समष्टिहृदय है ॥ यह सूर्यही ओंकार है ॥

आदित्य एष रुद्रः ॥ तै. शाखा. ६।९।६।८ ॥

यह सूर्यमण्डलवर्ती चेतनपुरुषही रुद्र है ॥

ब्रह्मा लातव्यः ॥ तां. ब्रा. ८।६।८॥ लातव्यसगोत्रा त्रिण्यक्षराण्येकं पदं त्रयो वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्णः ॥ षड्विंशब्रा. ४।७॥ अग्निर्वै रुद्र ईश्वरः ॥ कपिष्ठलकठशाखा ॥ ३५।५ ॥

ब्रह्माही लातव्य है॥ उस ओंकाररूप रुद्रका लातव्य ब्रह्मागोत्र, तीन अक्षर, एक पद, तीन वर्ण–नीलकमलके समान काला, सुवर्ण के समान शुद्धलाल, और श्वेत है॥ अग्नि और ईश्वर नाम रुद्रका है॥

अक्षरेण ॥ ऋ. १०।१३।३ ॥ ॐक्रतो स्मर ॥ काण्वशाखा ४।१०।१।१७॥ परश्चापरश्च ब्रह्म यदोङ्कारः ॥ प्रश्नो. ।६।२॥ ओमित्येवं ध्यायन् आत्मानम् ॥ मु. उ. २।६॥ रुद्रः खलु वै वास्तोष्पतिः ॥ तै. शाखा ३।४।१०।३॥ ब्रह्मवास्तोष्पतिम् ॥ ऋ. १०।६१।७ ॥

ओंकारसे॥ हे मन ! ॐको स्मरण कर ॥ ॐकारका दो रूप एक सूर्य-मण्डल अक्षर और दूसरा लक्ष्यचेतन भर्ग है॥ इस वाचक ॐके द्वारा वाच्यव्याणक रुद्रका ध्यान करो ॥ निश्चय रुद्रही प्रणवरूप घरका स्वामी है ॥ ब्रह्म नाम रुद्रका है, सोही रुद्र ब्रह्माण्डगृहका स्वामी है ॥

नमस्ताराय ॥ माध्यन्दिनी शाखा ॥१६।३९ ॥ ब्रह्मणःकोशोऽसि ॥ त. आ. ७।४।३ ॥ ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् ॥ श्वे. उ. २।८ ॥ धर्मावहं पापनुदं भगेशम् ॥ श्वे. उ. ६।६ ॥

संसारसागरसे तारनेवाले ओंकाररूप तारकमंत्रव्यापी रुद्रको प्रमाण है ॥ रुद्रकी प्राप्तिका घररूप प्रणव है ॥ ॐरूप नौकाके द्वारा ज्ञानी संसारदुःखसे तर जावे ॥ जो प्रणवरूप धर्मनौकाको चलानेवाला और पापरूप अज्ञानको नाश करनेवाला है सोही त्र्यंबका मातारूप ऐश्वर्यका स्वामी त्र्यंबकरुद्र है ॥

रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे ॥ जावालो० १।१ ॥ सदाशिवोम् ॥ तै० आर० १०।२१।५ ॥

अपर अक्षररूप प्रणवकी उपासना करनेवाले यतिको देहत्यागके समयपर प्रणवरूप चेतन रुद्र अपने ब्रह्मव्यापक स्वरूपका उपदेश करता है ॥ उस अभेद उपदेशसे व्यष्टि उपाधिको त्यागकर समष्टिस्वरूप

सदा सुखात्मक मैं हूं, एसा जब रुद्रकी दयासे अभेद ज्ञान होता है तबही जीव मुक्त होते हैं।

प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ मां० उ० ७ ॥

सर्व दुःखरूप प्रपंचरहित अनन्त ज्ञानस्वरूप द्वैतभेदहीन रुद्रको तुरीयरूपसे जो ज्ञानी साक्षात्कार अनुभव करके जानते हैं, अनन्त व्यष्टिभेदरहित सो ज्ञानी व्यापकरूप रुद्र है, सोही जानने योग्य है ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ॥ सावित्र्यास्तु परं नास्ति ॥ मनुस्मृतिः २।८३ ॥

एक अक्षररूप ॐ ही परब्रह्म है, प्राणायामसे उत्तम तप नहीं है, गायत्रीसे उत्तम मंत्र नहीं है ॥

शब्दानां प्रवरो मंत्रः ॥ म. भा. १२।११।११ ॥

वेदोंके मध्यमें प्रणवमंत्र श्रेष्ठ है ॥

ओंकाररथमारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम् । अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते ॥ म. भा. १३।१६।४४ ॥

संन्यासी ॐरूप रथमें बैठकर शिवमें प्रवेश करते हैं ॥ यही ओंरूप सूर्य देवलोक (ब्रह्मलोक) में जानेके लिये द्वार है ॥

ओंकारः स्वर्गद्वारम् ॥ आपस्तम्बधर्मसूत्रम् १।४।१३ ॥

ॐ ही स्वर्गद्वार है ॥ अकार अग्निको उकार वायुमें लय करे; वायुको मकार सूर्यमें लयकरे; सूर्यको अर्द्धमात्रा सोममें लयकरे; सोमरूप उमाको शून्य बिन्दु महेश्वरमें लयकरे ॥

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ तस्य वाचकं प्रणवः ॥ योगसूत्रम् ॥ १।२४–२७॥

अविद्या आदि पाँच क्लेशके कर्मफलसे रहित सबसे उत्तम निर्मल

प्रपंचका आधारही समष्टिपुरुष ईश्वर है ॥ जिस रुद्रसे कोइभी उत्तम आश्रय नहीं है, उसमें सबका ज्ञानरूप उमा बीज है। देशकालके विकारी धर्मसे राहित एकरस नित्य ज्ञानस्वरूप है सोही यह रुद्र ब्रह्मादियोंका भी उत्पन्न कर्ता तथा वेदरूप ज्ञानका दाता, पिता, गुरु है ॥ उस रुद्र वाच्यका यह ॐ रूप तारक मंत्र वाचक है ॥

उमेतिसंज्ञया यत्तत्सदा मर्त्ये व्यवस्थिता ॥ ओमित्येकाक्षरीभूता ससर्जोमां महीं तदा॥ वराहपुराण० ९।५॥ज्ञानविद्या उमा देवी शक्तिबीजा तपस्विनी ॥ पद्म पु. १।६२।९९ ॥ उमा प्रणवरूपिणी चिच्छक्तिः ॥ लिंगपु. ७०।६ ॥ उमा सोमः स्वयंशाक्तिर्वामा ज्येष्ठा च रुद्रस्य ॥ अग्निपु. १२४।१६ ॥ उमाशंकरयोर्भेदो नास्त्येव परमार्थतः ॥ एकामूर्त्तिरनिर्देश्या द्विधाभेदेन दृश्यते ॥ स्कंदपु. ५।२।३९।३४॥ अहमेकाक्षरो मंत्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः ॥ मत्स्यपु. १६७।६४ ॥ प्रणवः शिव ईरितः ॥ अग्निपु. १२४।१५ ॥ वेदाः प्रणवसम्भूताः प्रणवार्थो महेश्वरः ॥ शिवपु. ६।१।१७ ॥ ओमित्येकाक्षरे मंत्रे स्थितोऽहं सर्वगः शिवः ॥ शिवपु. ६।३।४ ॥ शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः ॥ वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ॥ ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु ॥ प्राणः प्रणव एवायं तस्मात्प्रणव ईरितः ॥ शिवपु. ६।३।१४।१९ ॥ जीवात्मनोर्मया सार्द्धमैक्यस्य प्रणवस्य च ॥ वाच्यवाचकभावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः ॥ शि. पु. ६।३।३७ ॥ एनमेव महामंत्रं जीवानां च तनुत्यजाम् ॥ काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्तिं परां शिवः ॥ तस्मादेकाक्षरं देवं शिवं परमकारणम् । उपासते यतिश्रेष्ठा हृदयाम्भोजमध्यगम् ॥ शि. पु. ६।१३।६३ ॥ (रुत्प्रणवरूपः शब्दस्तेन अन्तकाले काश्यामुप-

देशे नाराति स्वात्मरूपतां ददातीति रुद्रः) तस्मादग्नीशनामेति कालरुद्रेत्यनन्तरम् ॥ तारकेति ततो नाम भविष्यत्येव कीर्तितम् ॥ स्कंदपु. ७।३३।५४ ॥ अविमुक्ते महाक्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिहेतुके ॥ तारकस्योपदेशार्थं विश्वेशाधिष्ठिते स्वयम् ॥ स्कं. पु. ४।२।५ ॥ अहमग्निर्महातेजाः सोमश्चैषा ममाम्बिका ॥ अहमग्निश्चसोमश्च प्रकृतिः पुरुषः स्वयम् ॥ ब्रह्माण्डपु. ५।२७ ॥

जो उमा नाम है सोही प्रलय आदि धर्मवाली अव्याकृत नामसे स्थित है, यह उमा नित्य ज्ञानरूप है ॥ जब एक अक्षर प्रणव अव्यक्तरूप होती है, तब इस सूक्ष्म स्थूल जगत्मय भूमीको रचती है ॥ विद्या उमा है, और सबकी अनन्तरूपसे मूल कारण बीजशक्ति है ॥ चेतनकी ज्ञान अवस्थाही प्रणवरूप उमा है ॥ उ–रुद्र है मा–माता अम्बिका है ॥ उमाके संहित जो है सोही सोम है. चेतन रुत् ऋतकार–सृष्टि आदि ज्ञानही वाम भाग है, ओर सृष्टि आदि धर्मरहित अवस्थाही उत्तम ज्येष्ठा है, सोही रुद्रकी अर्द्धांगी है ॥ रुद्र तथा उमामें अभेदरूपसे भेद नहीं है, इसलिये रुद्रको ज्ञानस्वरूप कहा है ॥ उमा ज्ञान और रुद्र चेतन एकही स्वरूप अनादि है, एक होने पर भी जगत्भेदको लेकर दो दीखते हैं, परमार्थमें एकही है । ॐकाररूप एक मंत्रही मैं रुद्र हूँ ॥ तीन अक्षर त्र्यम्बक (अ. अग्नि कर्म, उ. वायु उपासना, म. सूर्य ज्ञान) रूपसे तारक हूँ ॥ ॐकारात्मक अग्निसे ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद, सूर्यसे सामवेद और अर्द्धमात्रारूप चन्द्रमासे अथर्वण प्रगट हुआ है ॥ बिन्दुरूप शिरमें अर्द्ध मात्रा गंगारूप सोम स्थित है, ज्ञान, गंगा, सोम ये अर्द्धमात्राके पर्याय है ॥ अकार–अग्नि (ब्रह्मा), उकार–वायु (विष्णु), मकार–सूर्य (रुद्र), ये तीनोंकी एक अवस्थाही अम्बि, भग, अम्बिका, त्र्यम्बका है ॥ उमा सोमरूप ज्येष्ठा है और अम्बिका वामा है ॥ चेतन घन रुद्र लिंग है ॥ ज्ञान, उमा, सोम आदि नामवाली अर्द्धमात्रा है ॥ चेतन रुद्र ज्ञान, उमा,

यही अर्द्धनारीश्वर है ॥ प्रथमच्छत् मैं एक बहुत होऊँ, इस विकारी ज्ञानकी अवस्थासें निर्विकारी विकारीके समान प्रतीत होने लगा सोही विशेष मायाअवस्थासे ढक गया. जैसे मेघसे सूर्य तैसेही विकारी बीज-सत्ता मायासे महेश्वर भी मायिक नामसे ढक गया ॥ मायारहित और माया सहित है यही अव्याकृत अवस्था है ॥ यह सूक्ष्म समष्टि हिरण्य-गर्भरूप है ॥ यह अव्यक्त और हिरण्यगर्भका पूर्ण विकासरूप स्थूल विराट् अवस्था है ॥ जैसे बीजमें अपनी उत्पत्तिके पूर्व वृक्षशक्ति अदृश्य रहती है तैसेही सृष्टिपूर्व प्रलयके समय चेतनकी ज्ञानसत्तामें विकारी एक मायासत्ता रहती है. जो लिंग ह सोही निराकार रुद्र है और अर्द्धमात्रा नित्य ज्ञानस्वरूप उमा है, जो लिंगमें त्रिपुण्ड्रके सहित बिन्दु है, सोहि त्रिविध मायासे वेष्टित मायिक पुरुष है, अर्थात् निराकारके अनन्त ज्ञान स्वरूपके जितने देशमें माया भासी उतनाही चेतन मायाका अधिष्ठान हुआ सोही बिन्दुरूप महेश्वर है ॥ यही मायारहित निराकार और माया-सहित मायिक है ॥ जो लिंग जलाधारीके अन्दर है सोही मायासहित और जो बाहर है सोही निराकार है ॥ जो जलाधारी (लिंग पीठ) है सोही तीन रेखावाली ☰ माया अ. उ. म. है. जिसमें तीन रेखा कल्पित हैं सोहा अनन्त ज्ञानरूप उमा है, इस अर्द्धमात्ररूप अनन्ताकाशव्यापी बिंदुरूप रुद्र लिंग है यह ज्ञानरूप शिव है ॥

शिवने कहा—मैं ॐ रूप मंत्रमें सर्वत्र व्यापकरूपसे स्थित हुआ सुखरूप हूँ ” शिवही प्रणव है, तथा प्रणवही शिव है. वाच्य वाचकका भेद नहीं है इसलिये ही अद्वैत है ॥ ब्रह्मासे पिपीलिका आदि सर्व प्राणि-मात्रका प्राणरूप यह शिव आधार है, और उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता है इस लियेही प्रणव कहा है ॥

शिवने कहा—“ मेरे साथ समष्टि ब्रह्माका और व्यष्टि जीवका अभेद होता है. प्राणिको शिवमें ले जावे सोही प्रणव है ॥ मैं वाच्य और मेरा वाचक प्रणवका [illegible] सम्बन्ध है ॥ इस ॐ मंत्रको काशीमें जीवोंको

मरते समय मैं सुनता हूँ और अन्तकालमें सायुज्य मुक्तिमय उत्तम सुख देता हूँ ॥ " इस कारणही ॐरूप रुद्रकी उपासना अपने हृदयकमलके मध्यमें संन्यासी करते हैं ॥ यह प्रणव बीजरूप ज्ञानीयोंको उपासनीय है, और धर्म, अर्थ, कामकी इच्छावाले ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बनीको प्रणवके सहित तीन व्याहृतियोंसे युक्त गायत्रीका जप करना चाहिये ॥ क्योंकि उपनयनके समय इसी प्रकारका उपदेश प्रचलित है ॥ और ब्रह्माश्रमी (प्रणवजापी संन्यासी) को मोक्षके लिये प्रणवही जप है ॥ रुत् प्रणवशब्द है, उस लिंगके द्वारा अन्तकालके समय काशीमें उपदेशसे, अपने तुरीय स्वरूपका उपाधिक जीवको अभेद ज्ञान देता है, सोही रुद्र है ॥ ॐकारकी तीन मात्रा क्रमसे, काम, अग्नि, माता, भूलोक-गार्हपत्य प्राण है। अर्थ, वायु, पिता, अन्तरिक्ष भुवर्लोक-दक्षिणाग्नि अपान है। धर्म, सूर्य, गायत्री, वेद-उपदेष्टा आचार्य, द्यौ, स्वर्लोक-आहवनीय व्यान है। और चतुर्थमात्रा अर्द्धनारीश्वर ज्ञानस्वरूप, उमा महेश्वर, अद्वैत, मोक्ष, ब्रह्मा, संन्यासी, गुरु, ब्रह्मलोक, सभ्याग्निसमान है॥ अधिदैव काशीयोंमें सूर्य है, और अन्तरिक्षमें वायु है ॥ अधिभौतिक काशी भूमीपर गंगातटवाली जहांपर विश्वनाथ है॥ सब क्षेत्रोंमें उत्तम मुक्तिका हेतु काशी है, उस काशीमें ओंकाररूप तारक मंत्रका उपदेष्टा रूपसे विश्वेश्वर स्वयं स्थित है ॥ "मैं अग्नि हूँ और मेरी शक्ति सोमरूप आम्बिका है ॥ मैं अग्निरूप पुरुष हूँ और सोमरूप उमा प्रकृति है ॥ "

प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिंगमुच्यते ॥ वक्त्राद्वै ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मा च भगवान् प्रभुः ॥ लिंग. पु. ७५।९ ॥

उस रुद्रकी प्रकृति पत्नी है, समष्टि चिदाभास पुरुष लिंग है सोही भगवान् समर्थ ब्रह्मा है, जिस ब्रह्माके मुखसे सब अग्नि गायत्रीमंत्र ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥

शिश्नं मे ब्रह्मणो रूपं भगं चापि महाविष्णुः ॥ पद्मपु. सृ. १।१७।६१ ॥ विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा ॥

विष्णु. पु. अं. २।६।७।३१॥ तथापि शाम्भवी शक्तिर्वेदे विष्णुः प्रपठ्यते ॥ स्कन्दपु. ४। उ०।८७।८०॥

मैं एक महेश्वर मायिक हूँ, अनन्त रूपधारी होऊँ, यही ब्रह्माका रूप मेरा लिंग है और अव्याकृतही महाविष्णुरूप भग है ॥ विष्णु (व्यापक) वलही अव्यक्त है, सोही अव्याकृत पराशक्ति है और इस अव्यक्तमें चिदाभासही क्षेत्रज्ञ पुरुष ब्रह्मा लिंग (चिह्नरूप) अपर ह ॥ वेदमें रुद्र-शक्तिको विष्णु नामसे गाय जाता है ॥

विष्णुं निषिक्तपाम् ॥ ऋग्. ७।३६।९ ॥

सिंचन किये वीर्यके गर्भको पालन करनेवाले विष्णुके पास जाय ॥

विष्णुः ॥ माध्यंदिनी शाखा १।२६ ॥

प्रसवकर्ता विष्णु है ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु ॥ ऋग्. १०।१८४।१ ॥

समष्टि अव्यक्त योनिरूप विष्णु व्यष्टिरूप स्त्रीके गुप्त भागको गर्भ-धानके उपयुक्त करे ॥

प्रादेशमात्रो वै गर्भो विष्णुः ॥ रा. ब्रा. ६।५।२।८ ॥

समष्टि अव्यक्तही व्यष्टिरूपसे स्त्रीमात्र है । उन प्रत्येक स्त्रीयोंका गर्भाशय बारह अङ्गुलका है ॥

तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ अव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किञ्चित् ॥ कठो. ३।९।११ ॥

विष्णुसे उत्तम प्राप्तिस्थान जो है सोही पुरुष है ॥ अव्यक्तसे परे पुरुष हैं । पुरुषसे परे और कुछ भी उत्तम नहीं है ॥

पुरुषो वै रुद्रः सर्वो वै रुद्रः ॥ तै. आर. १०।१६ ॥

पुरुषही रुद्र है, सर्वव्यापकस्वरूप रुद्र ह ॥

भगस्वामी च भगवान् भर्ग इत्युच्यते बुधैः ॥ लोकप्रसविता सूर्यस्तच्चिह्नं प्रसवात्मवत् ॥ लिंगे प्रसूतिकर्त्तारं लिंगिनं पुरुषं

यजेत् ॥ शिवशक्त्योश्च चिह्नस्य मेलनं लिंगमुच्यते ॥ शिव-
पु. १।२६।१०६,१०७ ॥

भगरूप त्र्यम्बकका ऐश्वर्य्यका स्वामी भगवान् भर्ग है ऐसा ज्ञानी कहते
हैं। जो लोकोत्पादक सूर्य है सोही जगत्को उत्पन्न करनेसे योनिरूप चिन्ह
है ॥ लिंगमें (सूर्यमण्डलयोनिमें) उत्पत्तिकर्त्ता मण्डलके स्वामी पुरुष
भर्गको पूजन करे ॥ शिव (चेतन पुरुष) और जडमण्डलरूप योनिका
एक सम्बन्धही लिंग है ॥

लिंगमध्ये स्थितो देवः पंचवक्त्रः सदाशिवः ॥ पद्मपु.
५।११४।३० ॥

सूर्यरूप लिंगके मध्यमें पाँच मुखवाला सदाशिव देव स्थित है॥ चार
दिशाओंमें चार किरण और एक किरण ऊपरकी दिशामें स्थित है ॥
ब्रह्माण्डरूप लिंगमें, अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, जल, भूमीरूप पांच मुख हैं ॥
दशदिशा दश हाथ हैं ॥ और प्रत्येक प्राणिके देहरूप लिंगमें पाँच प्राणही
जीवरूप शिवके मुख हैं ॥

बिन्दुनादात्मकं लिंगं जगत्कारणमुच्यते ॥ बिन्दुर्देवी शिवो
नादः शिव.लिंगं तु कथ्यते ॥ शिव. पु. १।१६।९० ॥

बिंदुनादरूप लिंगही जगत्का उत्पत्ति आदिक है ॥ बिन्दु देवी है
और नादही शिवरूप लिंग कहा है, अव्यक्त स्वरूपही उमादेवी है ॥

यत्र विश्वेश्वरः साक्षान्नादबिन्दुकलात्मकः ॥ ध्वनिरूपी हि
तत्रास्ति प्रणवो मंत्रविग्रहः ॥ स्कंद. पु. उ. ४।९६।१३॥

जिस लिंगरूप ओंमें नादबिंदु स्वरूपसे जगत्-ईश्वर स्वयं स्थित है ॥
उसमें उत्पात्ति, स्थिति, लय, तिरोधान, अनुग्रह रूप शान्त अनादि प्रवाह
है ॥ सोही ओंकारस्वरूप पंचमुखी लिंग है ॥

लिंगवेदी महादेवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः ॥ लिंग. पु. उ.
२४।२२॥

लिंगवेदी (जलाधारी–पीठ) उमा है, और लिंग स्वयं शिव है ॥

अव्यक्तं तु उमादेवी ॥ वराहपु. २५।४॥

उमादेवी ही अव्यक्त, अव्याकृत, विष्णु, भग, यज्ञ आदि नामवाली है॥

एत्वाक्षरं त्रयी विद्या ॥ जै. आर. ३।१९।७॥ अमृतं वै प्रणवः॥ गो. ब्रा. उ. ३।११॥ यज्ञो भगः ॥ श. ब्रा. ६।३।१।१९॥ विष्णुर्वै यज्ञः ॥ कपि. कठशाखा. ३५।९॥

ॐ अक्षरही तीन विद्यारूप है ॥ ॐ ही अमृत है ॥ यज्ञ (पूज्यरूप) भग है ॥ विष्णुही यज्ञ है ॥

विष्णोरेव नाभा अग्निं चिनुते ॥ काठकशाखा. २०।७॥ अग्निर्वा यम इयं यमी ॥ तै. शाखा ३।३।८।३॥ स्त्री वै वेदिः पुमान् वेदः ॥ काठकशा. ३२।६॥

यज्ञरूप योनिके (नाभौ) बिचमें अग्निरूप लिंगको स्थापन करे ॥ यह यज्ञवेदीही यमी बहिन है, और अग्निही यमरूप भाई है ॥ स्त्रीही वेदी है तथा पुरुषही वेद है ॥ अग्नि लिंग, यज्ञकुण्ड योनि है !

हरिं हि योनिम् ॥ अथर्वण २०।३०।२॥ हरये सूर्याय ॥ अथर्वण २०।३२।१॥

यज्ञवेदीका नाम योनि है और हरिनाम सूर्यका है ॥

सवितः–हरः॥ ऋ.१०।१५८।२॥ ज्योतिर्हरः॥ निरुक्त ४।१९॥

सूर्यमण्डलका चेतन पुरुष सविताही हर है, हे सविता ! तु हर है॥ चेतन ज्योतिही हर है ॥ हरि सूर्य और हर भर्ग है ॥

यः परः स महेश्वरः ॥ तै. आर. १०।१०।२४॥

जो पुरुष ॐकी तीनों मात्राओंसे परे है, सो चतुर्थरूप महेश्वर है ॥

ब्रह्मलोकाय प्राणान्प्राणेष्वथाजुहोत् ॥ सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः॥ ध्यायन्महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ म. भा. ६।१४३।३४।३५॥

सात्यकीकी रक्षाकेलिये कृष्णने अर्जुनको कह कर भूरिश्रवाका हाथ कटवाय दिया, कृष्णके अनरथको देखकर भूरिश्रवाने (आतुर संन्यस्त धर्मको स्मरणकर) ब्रह्मलोकको जानेकी इच्छासे अपने प्राणोंको वायुमें लय कर दिया, नेत्रको सूर्यमण्डलमें होम दिया. निर्मल मनको सोममण्डलमें होम दिया, उपनिषत्प्रतिपाद्य प्रणवकी महा चतुर्थ मात्रा रुद्रका ध्यान करता हुआ समाधि चढाकर बैठ गया, वह मुनिरूप हुआ ॥ यहाँपर ओंकारमें कृष्णका ध्यान नहीं है किन्तु रुद्रका है॥ कृष्ण तो उसका वैरी है ॥

तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः। पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परम् ॥ मुखं किञ्चित्समुन्नाम्य विष्टभ्य उरमग्रतः ॥ निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो निक्षिप्य हृदि धारणम् ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः॥ स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ॥ ब्रह्मलोकं गते द्रोणे ॥ वयमेव तदाऽद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ॥ अहं धनञ्जयः पार्थो कृपः शारद्वतस्तथा ॥ वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पांडवः ॥ अन्ये तु सर्वे नापश्यन् भारद्वाजस्य धीमतः ॥ महाभारत द्रोणपर्व ७ अ. १९२ श्लो. ५०—५८॥

कृष्णने असत्य भाषणकर भीमको कहा फिर भीमने द्रोणको कहा 'आपका पुत्र मर गया,' द्रोणने शस्त्र त्याग दिये, आकाशचारी अङ्गिरा आदि मुनियोंको द्रोणने कहा, 'तथास्तु' कहकर ज्ञानस्वरूप (संन्यासधर्म) का आश्रय किया और योगके बससे तेजोमयमूर्ति धारण करके सनातन विष्णु—व्यापक पुरुषका मनसे ध्यान करने लगा ॥ अगले भागमेंसे मुखको जरा ऊँचाकर वक्षःस्थलको स्थिर किया, द्रोणाचार्यने नेत्र बन्दकर अन्तःकरणके विषयोंको हटाकर हृदयमें धीरज धर सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदिका कर्ता, देवदेव ज्योतिःस्वरूप ॐएकाक्षर परब्रह्मका ध्यान करके

प्राणत्याग दीये ॥ द्रोणाचार्य ब्रह्मलोकमें गया, उस समय सब मनुष्योंमें केवल हे धृतराष्ट्र ! मैं संजय १ ॥ तथा कृपाचार्य २ ॥ युधिष्ठिर ३ ॥ अर्जुन ४ ॥ वसुदेव पुत्र कृष्ण ५ ॥ इन पाँचही मनुष्यजातिके पुरुषोंको उस द्रोणाचार्यकी आत्माका दर्शन हुआ था । और दुसरे सब मनुष्य द्रोणकी आत्माके दर्शन नहीं कर सके ॥ क्यों कि योगियोंकोही दर्शन होता है ।

महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ॥ ब्रह्मलोकं महद्दिव्यं देव गुह्यं हि तत्परम् ॥ म. भा. ७।१९२।५९॥

संजयने कहा-'हे महाराज ! जिस ब्रह्मलोकको देवता आदि नहीं जान सकते ऐसे ब्रह्माके लोकमें जानेवाले योगयुक्त बुद्धिमान् द्रोणाचार्यकी महिमाको उस युद्धमें हम पाँच मनुष्योंके सिवाय, और दुसरा कोईभी मनुष्य नहीं जानसका' ॥ जब कृष्ण शोला कला पूर्णथा तो द्रोण कृष्णको छोडकर ब्रह्माके लोकमें क्यों गया ? और कृष्णसे भिन्न तो कोइ लोक नहीं है, फिर द्रोण कृष्णमें क्यों नहीं मिला ? इस निष्कर्षसे यह सिद्ध हुआ कि कृष्णके साथ ॐ का कुछभी सम्बन्ध नहीं है. और ब्रह्माकी सब विभूति देव, दैत्य, सिद्ध, योगी है, तैसेही कृष्ण भी एक योगी है ॥ जहाँ कृष्णने अर्जुनको कहा है, ब्रह्मलोकसे पुनरावृत्ति होति है, वहाँपर त्रिलोकात्मक ब्रह्मलोकका वर्णन है ॥ और 'ओंकारकेद्वारा जो मेरा स्मरण करता उसका पुनर्जन्म नहीं होता,' एसा कृष्णने कहा है, उसका तात्पर्य्य ज्ञानी मात्र अपनेको व्यवहारमें व्यष्टिभेदसे अल्पात्मभाव वर्णन करता है, और परमार्थमें समष्टि-अभेदसे सर्वात्मभाव वर्णन करता है । जहाँ सर्वात्मभाव है, वहाँपर मैं ब्रह्म हूँ और जहाँपर देहाध्यास है वहाँपर मैं अमुक तथा अमुकका पुत्र हूँ ॥ जैसे सरस्वती, इंद्र व शुक्र, अम्भृणी, वामदेव आदिने अपने व्यष्टिस्वरूपको ' एकदेशीय मैं देवराज हूँ और समष्टिस्वरूपसे हे प्रतर्दन ! मैं इंद्र, सर्वात्म हूँ ' ऐसा कहा है, तैसेही कृष्णने कहा है, ' हे अर्जुन ! वृष्णी यादवोंमें मैं वसुदेवपुत्र वासुदेव हूँ. संन्यास, वानप्रस्थ,

ब्रह्मचारी, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्रादिके सब धर्मोंका त्याग कर " मामेकं शरणं व्रज " मेरी बातको सुन एक क्षत्रीय धर्मकी शरणमें जा (एक स्वजातीय धर्मको अंगीकार कर), भीष्म, द्रोणादिके वधका शोक मत कर, क्योंकि दुर्योधन पापी है, उसके पक्ष करनेवाले सब पापी हैं, दुर्योधनके लिये अनेक राजे विजयकी आशा करनेवाले हैं, उनके मनोरथरूप पापोंसे तेरेको विजयी करके छुडाहुँगा ' ॥ अर्जुनने कहा-' हे कृष्ण ! जो विजातियोंके धर्म हैं वे स्वजातिके लिये अधर्म हैं, वह अधर्मरूप मोह मेरा नष्ट हो गया, और स्वजातीय धर्मकी स्मृति प्राप्त हुई. अब मैं आपके वचनको मानूँगा. अर्थात् विजातियोंके लिये क्षत्रियधर्म हिंसायुक्त होनेपर भी वह क्षत्रियके लिये स्वधर्म होनेसे उत्तम है. इस लिये अब मैं युद्ध करूँगा ' ॥ " ततः पदं तत्परिमार्गितव्यम्. " जिस महेश्वरसे अनादि सान्त प्रवाहरूप संसारचक्रकी उत्पत्ति आदि प्रवृत्ति हो रही है, उसके स्वरूपको जो प्राप्त होता वह ज्ञानी फिर उसमेंसे लौटकर नहीं आता है ॥ " तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये. " मैं कृष्ण भी ध्यानसे उस आदिपुरुषको प्राप्त होता हूँ अर्थात् मैं उसी की शरण हूँ ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥ तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ म. भा. ६।४२।६१-६२॥

कृष्णने कहा-' हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है, वह यंत्रके समान लिंगदेहके उपर चढे हुए सब प्राणियोंको अपनी मायासे भ्रमण कराता है. हे भरतवंशी अर्जुन ! तू सर्व भावसे उस रुद्रको शरण ले क्यों कि उस देवके प्रसादसे तू उत्तम शान्तिको और अविनाशी धामको प्राप्त होगा ' ॥ यहाँ तक कृष्ण अपने व्यष्टिदेहके भेदभावसे समष्टि ईश्वर-उपासक है, और देवकीवसुदेवजन्य अपने कृष्णदेहसे भिन्न ईश्वर कहा है और अर्जुनको भी उस ईश्वरकी शरणमें जानेका उपदेश किया है ॥ और कृष्णने अपनेको 'मैं ब्रह्म हूँ' यह कहा

है, उस अवस्थामें व्यष्टि कृष्णदेहके धर्मोंसे रहित सर्वात्मक समष्टि सत्यलोकवासी ब्रह्माका स्वरूपसे चिन्त्वन करता है. तीनों लोकोंसे परे अलोक, मह, जन, तप, सत्य, लोकही ब्रह्मलोक है, ब्रह्माके दो रूप एक उपाधिक और दुसरा निरुपाधिक है, उस उपाधिकके भी दो रूप समष्टि ईश्वर और व्यष्टि जीव है, और निरुपाधिक तुरीय महेश्वर है।

हृदिस्थः सर्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः॥ म. भा. १३।१४।१३७

सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित अनन्त रूपधारी महेश्वर है॥

न ते गिरित्राखिललोकपाल विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम्॥ ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम्॥ श्रीमद्भागवत स्कंध. ८।७।३१॥

हे वेदरक्षक समस्त भुवनपालक रुद्र! आपका स्वरूप रज, तम, सत्त्व, इन तीन गुणोंके सम्बन्धसे रहित, द्वैतप्रपंचहीन, अद्वैत, ब्रह्म (ॐ) स्वरूप है॥ तथा जिस स्वयंप्रकाशी चेतन आपको द्वैतभावसे ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णुभी नहीं जान सकते तो इतर मनुष्योंकी क्या गणना है?॥

तमसोऽन्ते महेश्वरः॥ म. भा. १२।२१६।१६॥

त्रिविध मायाके कार्यरूप तमसे रहित महेश्वर है॥

ब्रह्माऽलोहितं तारकं शिवः॥ अग्नि. पु. २९५।३॥

राग आदिगुणोंसे रहित ॐ तारक शिव है॥

तारकाय ताराय च॥ ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः॥ म. भा. १२।२८४।१०६–१२४॥

तारक मंत्ररूप ॐ है। तारनेवाला है। ऋग्, साम, यजु है। आपको वेदवेत्ता ओंकार कहते हैं॥

* * *

ॐकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः॥ त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥ योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि

वर्षाण्यतन्द्रितः ॥ स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥ मनुस्मृतिः २।८१।८२॥

ओंकारपूर्वक अविनाशी तीन महा व्याहृतियोंके सहित तीन पादवाली गायत्रीको ब्रह्माका प्रतिक (प्रतिनिधि लिंग-चिन्ह) जानना ॥ जो मनुष्य आलस्यको त्यागकर तीन वर्ष पर्य्यन्त गायत्रीका प्रतिदिन जप करता है, वह द्विजाति मर कर स्वेच्छा देहधारी देवता होता है और सर्वव्यापक भावको प्राप्त होता है ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयंत्रितः ॥ नायंत्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ मनु. २।१०३।११८॥

जो द्विज प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता है, सर्व कर्मोंसे रहित शूद्रके समान उस द्विजको जातिसे निकाल दे ॥ वैदिक धर्मके अनुसार वर्तनेवाला, गायंत्रीको जपनेवाला द्विजही उत्तम है, उसको चारों वेदोंका पुण्य मिलता है ॥ और चार वेद पढा हुआ, वेदविरुद्ध, लशुन, प्याज, काँदा, डुङ्गरी, दारु, आदि अभक्ष्यको खानेवाला तथा घृत, डुध, दही, गुड, लवण, तिल इत्यादि वेचनेवाला, वह नीच शूद्र है ॥ जो ब्राह्मण एक दिन गायत्री नहीं जपता, तीन दिन संध्या नहीं करता और बारह दिन वैश्वदेव नहीं करता है वह शूद्र है।

नामनाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोषसः ॥ यदजः प्रथमं सम्बभूव सह तत्स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम् ॥ अथर्वण १०।७।३१॥

द्विजातिमात्र (तीनों वर्ण) उषाके उदयसे कुछ पहिले (सूर्य उदयके एक घण्टा प्रथम) स्नान करके, प्रणव और तीनों व्याहृतियोंके सहित गायत्रीमंत्रात्मक नामको आवाहनपूर्वक जपता रहे, फिर सूर्य उदय होते

ही सन्ध्या समाप्त करता रहे ॥ इसी प्रकार संन्यासी रुद्रके प्रणव नामको जपता रहे ॥ ब्रह्मके वेदमें मुख्य पाँच नाम है. ॐ १ ॥ बषट्कार २॥ स्वाहा ३ ॥ स्वधा ४ ॥ नमः ५ ॥ जो ब्रह्मा सबके पहिले उत्पन्न हुआ, फिर ब्रह्मदेवने सूर्य को प्रगट किया, उस सूर्यमण्डलमें रुद्र विशेष रूपसे विराजमान हुआ सोही भर्ग है ॥ त्रिवर्ण, त्रिआश्रम गायत्रीका और संन्यासी ॐनामवाले ब्रह्मका जप करते हैं ॥ वे सब अपने २ अधिकार-भेदसे स्वराजरूप सुखको प्राप्त होते हैं ॥ उस प्रणव–गायत्री–प्रतिपाद्य सुखसे परे और उत्तम सुख नहीं है ॥

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धयारुद्रमक्तौ ॥ बृहन्त-मृष्वमजरंसुषुम्नमृधग्घुवेमकविनेषितासः ॥ ऋ० ६।४९।१०॥

हे द्विजातिमात्र उपासको ! तुम सब इन प्रणव, व्याहृति, गायत्री आदि मंत्रोंके द्वारा, प्राणियोंके उत्पत्ति पालनकर्ता ब्रह्माण्डके पिता रुद्र-की प्रातःकालमें प्रार्थना करो तथा मध्याह्नके सहित सायंकालमेंभी रुद्रको जप और अर्घ्यप्रदानरूप वृद्धिसे प्रसन्न करो ॥ जिस सर्वज्ञकेद्वारा प्रेरित हुए हम सब प्रजा सुखको भोगते हैं, वह जन्म जरा आदि दुःखसे रहित, उत्तम सुखस्वरूप, सुन्दर, दर्शनीय, सूर्यमण्डलमध्यवर्ती तुरीय रुद्रको हम प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालकी सन्ध्यामें बुलाते हैं ॥

स एषश्चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् प्राणस्तं ब्रह्मगिरिरित्याचक्षते ॥ ऐ. आर. २।१।८॥

जो यह सूर्य दिशा, चंद्रमा, अग्नि, वायु है सोही यह ब्रह्म (ॐ) रूप गिरि (पर्वत) है. उस सूर्य अधिदैव को गिरि (कैलास) ऐसा कहते हैं ॥ कान, नेत्र, मन, वाणी, प्राणयुक्त देह ही अध्यात्म कैलास है और भूमीपर हिमालयमें अधिभौतिक कैलास है ॥

गिरिर्वै रुद्रस्य योनिः ॥ काठकशाखा ३६।१४॥

पर्वतही रुद्रका निवासस्थान है ॥

अग्निः पशुरासीत् ॥ वायुः पशुरासीत् ॥ सूर्यः पशुरासीत् ॥ माध्यन्दिनीशाखा २३।१७।१८॥ पशूनां पतये नमः ॥ मा० शाखा १६।१७॥

भूलोकस्थ अग्नि पशु (प्रकाशक) है॥ भुवर्लोकस्थ वायु पशु (प्रकाशक) है॥ द्युलोकस्थ सूर्य पशु (प्रकाशक) है॥ इन तीनों नेत्ररूप पशुयोंका स्वामी तुरीय रुद्रको प्रणाम है॥ इस कारणसे रुद्रका नाम पशुपति है

देवस्य भर्गः॥ ऋ. १।४१।१॥ भर्गो ह नाम॥ ऋ. १०।६१।१०॥ भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ अथर्वण ९।१।४॥ भर्जयति इति वैष भर्ग इति रुद्रः ॥ मै. उ. ६।३॥

देवका नाम भर्ग है॥ प्रसिद्ध भर्गनाम है। भर्गही सब मरणधर्मी-योंके हृदयमें चेतनरूपसे विचरता है॥ जो समस्त पापोंको भूँजता है सोही यह सर्वव्यापक रुद्र है, ऐसा वेदवेत्ता कहते हैं॥

रुद्र यत्ते क्रयी परं नाम ॥ तै० शाखा० १।८।१४।२॥

इसपर सायणभाष्य—

हेरुद्र यत्तव परमुत्कृष्टं नाम॥ क्रयी जपपरान्पुरुषान्फलप्रदानेन क्रिणाति वशीकरोतीति क्रयी ॥

हे रुद्र! जो आपका अति उत्तम ॐ। भूः भुवः स्वः। तत्सवितुर्व० नाम है। सोही नाम जप करनेवाले पुरुषोंको मनोवांच्छित फल देकर आधीनमें करता है, इसलिये क्रयी है॥

सो गायत्री ब्रह्म वै गायत्री ब्रह्मणैवैनं तं नमस्यति॥ ऐ. ब्रा. १३।१०।३४॥

जो रुद्र है सोही ॐ है। जो ब्रह्म (ॐ) है सोही गायत्री है। ब्राह्मण मात्र इस सूर्यको गायत्रीसे प्रणाम करते हैं, उस सूर्यवर्ती रुद्रकोही नमस्कार करते हैं॥

ॐभूर्भुवः स्वः ॥ माध्यन्दिनीशा. ३।५॥

तीन लोकात्मक, अग्नि, वायु, सूर्य तीन देव हैं ॥

ईश्वराः ॥ अथर्वण ७।१०७।१॥

तीन लोकके तीन ईश्वर–अग्नि भूलोकका ॥ वायु भुवर्लोकका ॥ सूर्य स्वर्गलोकका है ॥ इन तीनों इश्वरोंका जो प्रेरक है सोही चेतन महेश्वर है॥

भूर्भुवःस्वरिति सा त्रयी विद्या ॥ जै. आर. २।९।७॥

तीन व्याहृति येही विद्यारूप उमा है ॥

भूरग्निश्च पृथिवीश्च मां च ॥ भुवो वायुश्चान्तरिक्षं च मां च ॥ स्वरादित्यं च दिवं च मां च ॥ त्रीꣳश्च लोकान्त्संवत्सरं च ॥ प्रजापतिस्त्वासादयतु ॥ तै. ब्रा. ३१०।३।१॥

भूः अग्नि और भूमीलोक और कर्म है, मेरा उद्धार करे ॥ भुवः वायु और अन्तरिक्ष और उपासना है, मेरा पालन करे ॥ स्व आदित्य, और द्यौ तथा ज्ञान है, मेरेको ज्ञान उपदेश करे ॥ तीन लोकोंको और वर्षको धारण करनेवाला प्रजापति है, वह मेरेको अभेदस्वरूपकी प्राप्तिसे उद्धार करे ॥

भूमिरन्तरिक्षꣳद्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरꣳह वाएकं गायत्र्यैक-पदमेतदुहैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषुलोकेषु तावद्ध जयति यो ऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ ऋचो यजूꣳषि सामानीत्यष्टावक्षराणि०॥ प्राणोऽपानो व्यानइत्य० ॥ अथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदम्०॥ बृ. उ. ५।१४।१–२–३॥

भूमी अन्तरिक्ष द्यावा, ये आठ अक्षर हैं ॥ आठ अक्षरोंवाला प्रसिद्ध "तत्सवितुर्वरेणियं," पदही प्रथम चरण है । इस गायत्रीके एक चरण की उपासना जो पुरुष करता है उसको तीनों लोकोके सब पदार्थ मिलते

हैं॥ ऋचः यजुँषि सामानि, ये आठ अक्षर त्रयी विद्या है॥ आठ अक्षरों-वाला प्रसिद्ध "भर्गो देवस्य धीमहि," पदही दुसरा चरण है। इस द्वितीय चरण की जो द्विजातिमात्र उपासना करता है, उसको त्रयी-विद्यासे सब फल मिलता है॥ प्राण अपान वियान, ये आठ अक्षरही "धियो यो नः प्रचोदयात्" यह तिसरा पद है। जो द्विजाति इस तृतीय पदकी उपासना करता है, वह सब प्राणियोंको वशमें कर लेता है, और जो यह सूर्य तपता है सोही गायत्रीका चतुर्थ पद है॥

पञ्चमुखोऽसि प्रजापतिर्ब्राह्मणस्त एकं मुखम् ॥ राजा त एकं मुखम् ॥ श्येनस्त एकं मुखम् ॥ अग्निः एकं मुखम् ॥ त्वायि पञ्चमं मुखं तेन सर्वाणि भूतान्यात्स तेन मुखेन मामन्नादं कुरु॥ शांखायन आरण्यक ४।९ प्रजापतिर्वै विप्रो देवा विप्राः॥श.ब्रा.६।३।१।१६॥ आहुतिर्वा एष यद्ब्राह्मणस्य मुखम्॥ तां. ब्रा. १६।६।१४॥ अग्निर्वै ब्राह्मणः ॥ कपिष्ठलकठशाखा ४।६॥ राजा महिमा ॥ तै० ब्रा० ३।९।१०।१॥ एतद्वै वयसामोजिष्ठं बलिष्ठं यच्छ्येनः ॥ श. ब्रा. ३।३।४।१५॥ प्राणो वै वयः॥ ऋ. ३।२९।८॥ ऐ० ब्रा० १।२८॥ इयं वै विराट् ॥ गो. ब्रा. उ. ६।२॥ मुखं प्रतीकम् ॥ श. ब्रा. १४।४।३।७॥ सोमः सर्वा देवताः ॥ ऐ. ब्रा. २।३॥ आदित्यो वै सोमः ॥ काठकशाखा २६।२॥ विष्णोः....धामानि ॥ रश्मि-र्देवानाम् ॥ तां. ब्रा. १।६।५।७। सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा ॥ श. ब्रा. १४।२।३।९॥ आत्मा पदम् ॥ शांखायन ब्रा. २३।६॥

हे सोमात्मक साविता ! तु पाँच स्वरूपवाला प्रजापति है, तेरा एक मुख ब्राह्मण (अग्नि) है। एक राजा इन्द्र है। एक मुख वायु है॥ तेरा एक अग्निष्टोमरूप विराट् भूमी है। और तेरा पाँचवाँ मुख संवत्सर है॥ तु इस मुखमें सब प्राणियोंको भक्षण करता है। अग्नि रुद्र उमा सोमही

अर्द्धनारीश्वर मूर्ति है ॥ हे अर्द्धनारीश्वर प्रजापते ! अपने पंचमुखोकेद्वारा हमको दीर्घायुके सहित अन्न आदि सुखका भोक्ता कर ॥ सविताही विप्र है और देवताही विप्र हैं ॥ अग्निहोत्रात्मक अग्निके मुखमें आहुति दी जाती है ॥ जो यह अग्निही देवोंमें ब्राह्मण है ॥ इन्द्रही महिमा है॥ मरुतसमूह पक्षियोंका राजा रुद्ररूप वायुही श्येनः (तेजस्वी तथा) बली है ॥ प्राणरूप वायुही पक्षी है ॥ यह भूमीही विराट् है॥ मुखका अर्थ प्रतीक अवस्थान्तर प्रतिनिधि है ॥ सोमही सर्व देवस्वरूप है ॥ सविताही सोम है ॥ सूर्यकी किरणही देवताओंका स्थान है॥ सविताही समस्त देवोंका स्वरूप है ॥ व्यापक आत्माही पद है ॥

आत्मैषा वै गायत्री ॥ काठकशा. ३४।८॥ आत्मा वै पुरुषः ॥ का. शा. १९।१२॥ सर्वो वै पुरुषः ॥ का. शा. ८।१२॥ असौ आदित्यः सर्वाः प्रजाः ॥ तै. शा. ६।५।५।१॥

वह गायत्रीही आत्मा है ॥ यही परमपदस्वरूप पुरुष है ॥ यही सर्व व्यापक पूर्ण पुरुष है ॥

पञ्चपदा वै विराट् ॥ तस्या वा इदं इयं पादः ॥ अन्तरिक्षं पादः ॥ द्यौः पादः ॥ दिशः पादः ॥ परोरजाः पादः ॥ तै. आर. १।२९।३॥

गायत्रीरूप विराट् पाँच स्वरूपवाली है ॥ उस प्रथम स्वरूप यह भूमी है । अन्तरिक्ष दूसरा, द्यौ तीसरा, दिशायें चतुर्थ, और तमरहित पाँचवाँ स्वरूप है ॥ यह पंचमुखी शिव, उमा गायत्री है ॥

परोरजास्ते पञ्चमः पादः ॥ तै. ब्रा. ३।७।७।१३॥ एष वाव स परोरजाः य एषोऽर्वाग्रजा इति ॥ तै. ब्रा. ३।१०।९।४॥

हे सविता ! आपका रूप तमरहित पाँचवाँ है । यह सूर्यही तम आदि पापसे शून्य उत्तम है जो यह पहिले प्रगट हुआ है तथा सब इसके पीछे उत्पन्न हुए हैं ॥

देवानाञ्च ऋषीणां च पूर्वजम् ॥ महादेव॑ सहस्राक्ष॑ शिवमाह्वयाम्यहम् ॥ मैत्रायणीशाखा २।९।१॥

देव, ऋषि, गन्धर्व, पितर, राक्षस, सर्प दैत्यादि प्रजाकी उत्पत्तिसे पहिले प्रगट होनेवाला सबका अन्तर्यामी महादेवको मैं मंत्रद्रष्टा नारद-मुनि बुलाता हूँ ॥

प्रचेतसे सहस्राक्षाय ब्रह्मणः पुत्राय नमः ॥ सहस्रबाहुर्गोपत्यः स पशूनभिरक्षतु ॥ मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥ आकाशस्यैष आकाशो यदेतद्भाति मण्डलम् ॥ सामवेदीयमंत्रसंहिता प्र. २।६॥

अति ज्ञानी अनन्त नेत्रवाले ब्रह्माके प्रथम पुत्र सूर्यवर्ती रुद्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ जो रुद्र किरणोंका स्वामी असंख्य हाथोंवाला है, वह पशु-ओंकी सर्वत्रसे रक्षाकरे ॥ सर्व ऐश्वर्य्यस्वामी रुद्र मेरेमें ऐश्वर्यको स्थापन करे ॥ जो यह आकाशके मध्यमें प्रदीप्त सूर्यमण्डल है, सो यह आकाश है, यह मण्डलश्मशानमें चेतन रुद्र वास करता है ॥

येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः ॥ पिता पुत्रेण पितृमान् योनियोनौ ॥ नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम् ॥ सवानुभूमात्मान॑संपराये ॥ तै. ब्रा. ३।१२।९।७॥

जिस चेतन रुद्रकेद्वारा जड सूर्यमण्डल प्रकाशित है, त्रिलोकमें तपता है ॥ जो कारणरूप रुद्र ब्रह्माका पिता है, सोही रुद्र ब्रह्मका पुत्र रूपसे सूर्यमण्डल योनिमें स्थित है, इसालियेही ब्रह्मा पितृमान् है। वेदरहित पुरुष परलोकगमनके समय, उस सर्वसाक्षीस्वरूप रुद्रको नहीं जानता है वह मनुष्य जन्मको व्यर्थ खोता है ॥

रुद्रं बृहन्तं ॥ ऋ. ७।११।४॥

रुद्रही सबका आदि कारण महादेव है ॥

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ मा. शा. ३१।१९॥

उस सूर्यके कारणस्वरूप रुद्रको ज्ञानी पुरुष सर्वत्र देखते हैं ॥

असौ वा आदित्यः स्वयम्भूः ॥ मै. शाखा. ४।६।६॥

यह आदित्यमण्डलवर्ती पुरुषही स्वयं प्रगट हुआ है ॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ॥ त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ॥ एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ अथर्वण १०।८।२७।२८॥

हे रुद्र! तू नर है, तू नारी है, और तू कुमार कुमारी है। तू वृद्धरूपसे दण्डके द्वारा चलता है, और तूही उत्पन्न हुआ सर्व जगत्स्वरूप है। तू इन प्राणियोंका पिता, माता, तथा पुत्र है, और इनका बडा भ्राता और लघु भाई है। मैं एक रुद्र संकल्पी हूँ, अपने संकल्पकेद्वारा बहुत होऊं, यही मायिकने मायारूप मनमें प्रवेश किया, जो पहिले ब्रह्मारूपसे प्रगट हुआ सोही सूर्यमण्डलके मध्यमें विराजमान हुआ ॥

आदित्यङ्गर्भम्पयसा समङ्ग्धिसहस्रस्य प्रातिमां विश्वरूपम् ॥ काण्वशाखा २।४।४।४॥ मा. शा. १३।४१॥

जो सूर्यके बिचमें अनन्त देवादि प्राणियों और स्थावर आदि समस्त प्रपंचका रूप है, उस भर्ग मूर्तिको दूध आदि हविसे, और जल अर्घ्यसे सत्कारयुक्त सिंचन करो ॥

हरिश्मश्रुः ऋ. १०।९६।८॥ हरिकेशः सूर्यरश्मिः ॥ मै. शाखा. २।८।९॥ हरिश्मश्रुः ॥ म. भार. शिवस्तुतिपर्व १२।२८३।४०॥ हरिश्मश्रुरूर्ध्वकेशः ॥ म. भा. १२।२८४।१४२॥

सूर्यकिरणही सूर्यस्थ रुद्रकी मुछदाढ़ी है ॥ किरणही मुछदाढ़ी, और किरणही केश हैं ॥ पीले केशही सूर्यकिरण हैं। सूर्यके उपर प्रकाशित किरण समूहही रुद्रके ऊर्ध्व केश हैं।

क्षेत्रस्य पतिस्तु शम्भुः ॥ ऋ. ७।३५।१०॥

अधिदैव, अधिभौतिक, अध्यात्म क्षेत्रमय देहका स्वामी रुद्र है ॥

अर्द्धेन यज्ञवाठान्ते जटाधर इति श्रुतः ॥ अर्द्धेन गगने शर्वः कालरूपी च कथ्यते ॥ मृगार्धमार्द्राऽऽदित्यांशास्त्रयः ॥ सोम्य-गृहं त्विदम्॥ मिथुनं भुजयोस्तस्य गगनस्थस्य शूलिनः॥ सूर्यक्षेत्रं विभोर्ब्रह्मन् हृदयं परिगीयते ॥ वामनपुराण ५।२८।३५॥

रुद्र आधे देहसे यज्ञकुण्डके मध्यमें अग्निरूपसे विराज़मान है, और आधे रूपसे आकाशमे कालरूपी शर्व नामसे कहा जाता है। भूमीलोकस्थ अग्निकेद्वारा पृथिवीसे समस्त प्राणि उत्पन्न होते हैं सो अग्निभव है, और द्युलोकस्थ सूर्य उदय अस्तरूपसे प्राणिमात्रकी आयु हरण करता है, सोही शर्व है ॥ सूर्यरूपी शर्वके फिर एक भागमंसे आधा मृग, व्याध और आर्द्रा नक्षत्र है, आदित्यके ये तीन अंश हैं, मृग, व्याध तथा आर्द्रा, और सूर्यमण्डल देह है ॥ यह घर शान्तरूप है ॥ सूर्य-देहस्थ आदित्य अखण्ड चेतन रुद्र है। उस आकाशस्थित रुद्रके दो हाथ रूप जोडी, मृग, व्याध और आर्द्रा नक्षत्र है ॥ हे ब्रह्मन् ! व्यापकरुद्र क्षेत्रज्ञका सूर्यमण्डल क्षेत्र है॥ अर्थात् रुद्रका विशेष रूपसे सूर्यमण्डलमें उपलब्धि है और प्राणिमात्रके हृदयमें है, सामान्यरूपसे सर्वत्र व्यापक होनेपर भी विशेष रूपसे अपने हृदयमें और सूर्यमें कहा है ॥

परिमण्डलं हृदयम् ॥ श. ब्रा. ९।१।२।४०॥ हृद्यम् ॥ ऋ. ४।५८।११॥

व्यापक सूर्यमण्डलही हृदय है ॥ सूर्य हृदय है ॥

स एष मृत्युः ॥ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः ॥ श. ब्रा. १०।५।२।३॥ एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोत्यथ म्रियन्ते॥ श. ब्रा. १०।४।३।१॥ बाहुर्नक्षत्रं रुद्रो देवता ॥ मै. शा. ४।१३।२०॥ काठकशा. ३९।१३॥

जो यह सूर्यमण्डलमें पुरुष प्रकाशित है, सोही यह काल है ॥ यही पुरुष दिनरातरूपसे मनुष्य आदि प्राणियोंकी आयु नाश करता है जिससे प्राणि मरते हैं॥ मृग, व्याध और आर्द्रारूप हाथके देवता रुद्र है॥

रुद्रो वा अग्निः ॥ कपिष्ठलका. शाखा ४०।५॥ आदित्य एष रुद्रः ॥ तै. शा. ६।५।६।८॥

रुद्रका नाम अग्नि है, जैसे पुरुषनाम देह और देहस्थित चेतनका नाम है तैसेही, जड सूर्यका और सूर्यमण्डलस्थित चेतनका नाम आदित्य है ॥ यह चेतन पुरुषही रुद्र है ॥

आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति तत्र ता ऋचस्तदृचामण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजूꣳषि स यजुषां मण्डलꣳ स यजुषां लोकः सैषा त्रय्येव विद्या तपति य एषान्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः ॥ तै. आर. १०।१३।१॥

यह सूर्यमण्डल तपता है, वह मण्डल ऋग्वेद्रात्मक ऋचाओंका समूह है, वे ऋचायें प्रातः कालमें मण्डलरूपसे तपती हैं, उस ऋचासमूहमण्डलमें जो यह अखण्ड पुरुष है, सोही ऋचाओंके देवताओंका निवासस्थान है, और वह मण्डल यजुमंत्रोंका समूह है, वे यजुमंत्र मध्याह्नमें तपते हैं, उस अति प्रदीप्त मण्डलमें जो पुरुष है सोही यजुमंत्रोकें देवताओंका अधिष्ठान है ॥ तथा सायंकालमें साम तपता है॥ सो यह विद्या ऋग्, यजु, साम, तीनरूपसेही तपति है ॥ जो यह सूर्यमण्डलके मध्यमें निर्मल तेजोमय पुरुष है, सोही त्रिविधस्वरूप उमाका स्वामी रुद्र है ॥

ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव इयते ॥ यजुर्वेदे तिष्ठाति मध्ये अह्नः ॥ सामवेदेनास्तमये महीयते ॥ वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः ॥ तै. ब्रा. ३।१२।९।१॥

द्यौस्थित सूर्य दिनके प्रथम भागमें ऋग्मंत्रोंके साथ चलता है, मध्याह्नमें सूर्य यजुमंत्रके देवताओंके संग स्थित है, और सायंकालमें साममंत्रके देवोंके सहित अस्त होता है ॥ सूर्य तीनों वेदोंकेसहित उदय और अस्त होता है ॥

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन ॥ स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ॥ अथर्वण १३।३।१०॥

जो सूर्य सायंकालमें अग्निमें प्रवेश करता है सोही वरुण है, जो प्रातः उदय होतेही अग्नि सूर्यरूप होता है सोही मित्र है, जो सूर्य रात्रीदिनकी संधीके बीच उषाकालमें अन्तरिक्षके द्वारा रूप धारण करके प्रकाशित होता है सोही सविता है, जो मध्याह्नके रूपको धारण करके द्यौमें तपता है सोही इन्द्र है ॥

व्याषि सविता भवसि ॥ उदेष्यन्विष्णुः ॥ उद्यन्पुरुषः ॥ उदितो बृहस्पतिः ॥ अभिप्रयन्मघवा इन्द्रो वैकुण्ठो मध्यन्दिने ॥ भगोऽपराह्ने ॥ उग्रो देवो लोहितायन् ॥ अस्तमिते यमो भवसि ॥ जैमिनीय आरण्यक ४।५।१–२॥

उषाकालके हे सूर्य ! तू सविता है, जो प्रकाश है और सूर्यका उदयरूप दर्शन नहीं सोही हे सूर्य ! तू विष्णु है, अग्निहोत्र और सूर्यके उदयका प्रकाशही हे सूर्य ! तू पुरुषरूप मित्र है ॥ हे सूर्य ! तेरा जो सर्व प्रकाश है सोही तू बृहस्पति है, तेरा जो गमन है सोही मघवा है। मध्याह्नमें हे सूर्य ! तेरा जो अकुण्ठित प्रकाश है सोही इन्द्र वैकुण्ठ है, अपराह्नमें तेरा तेजही भग है, तेरी सायंकालकी रक्तप्रभाही उग्र है, अस्तसमयमें हे सूर्य ! तू यमराज होता है ॥

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ॥ ऋ. १।१६४।४६॥ एक एव-रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे ॥ तै. शा. १।८।६।१॥

एक आत्माही है उसको कार्यकारणके असंख्य भदोंको लेकर ज्ञानी जन बहुत नामोंसे कहते हैं ॥ एकही परिपूर्ण रुद्र अवस्थित है, द्वैत वस्तुके लिये स्थान नहीं है, रुद्रसे भिन्न जो कुछ भी प्रतीत होता है वह सब मायामात्र है ॥

य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्य-केश आप्रणखात्सर्व एव सूवर्णः ॥ तस्य यथा कप्यासं पुण्ड-रीकमेवमक्षिणी ॥ तां. आर. (छां. उ.) १।६।६-३७॥

जो यह पुरुष सूर्यमण्डलके मध्यमें दिखता ह वह भर्ग, तेजोमय मुछ, दाढ़ी, किरणरूपी केशोंवाला है, तथा चरणके नखसे लेकर सर्वाङ्ग निर्मल ज्यो:तिस्वरूप है, जैसे बन्दरके दोनों नितम्बके भाग सिन्दुरके समान लाल होते हैं, तैसेही उस रुद्रके देहरूप सूर्यका उदय और अस्तही दो नेत्र है, वे दो नेत्ररूप प्रकाश उदय अस्तके समय लाल दीखते हैं॥ वीर पुरुषको सिंहकी उपमा देनेसे गोभक्षी नहीं कहा है ऐसेही सूर्यस्थित पुरुषको बन्दरके नितम्बकी उपमासे वह नितम्ब नहीं होता है॥

एतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः स प्रजापतिस्तद्ब्रह्म ॥ शां. ब्रा. ८।३॥

इस सूर्यवर्ती पुरुषको ज्ञानी जानते हैं। वह रुद्रही इन्द्र, सोही प्रजापति है, सोही ब्रह्म है ॥

तस्या एष प्रथमः पादो भूस्तत्सवितुर्वरेण्यमिति ॥ अग्निर्वै वरेण्यम् ॥ आपो वै वरेण्यम् ॥ चन्द्रमा वै वरेण्यम् ॥ तस्या एष द्वितीयः पादो भर्गमयो भुवो भर्गो देवस्य धीमहीति ॥ अग्निर्वै भर्गः॥ आदित्यो वै भर्गः॥ चन्द्रमा वै भर्गः॥ तस्या एष तृतीयः पादः स्वर्धियो यो नः प्रचोदयादिति ॥ यजो वै प्रचोदयति ॥ स्त्री च वै पुरुषश्च प्रजनयतः ॥ ॐ भूर्भुवःस्वः ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्, इति ॥ यो वा एतां सावित्रीमेवं वेदाऽपपुनर्मृत्युं तरति सावित्र्या एव सलोकतां जयति ॥ सामवेदीयजैमिनीय आरण्यकं ४।२८।१—६॥

उस गायत्रीका 'भूः तत्सवितुर्वरेण्यं' यह प्रथम चरण है, अग्निही वरेण्य है, अन्तरिक्षही वरेण्य है, चंद्रमाही वरेण्य ह॥ उसका 'भुवः भर्गोदेवस्य धीमहि', यह दुसरा चरण है, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमाही भर्ग है॥ उस सावित्रीका 'स्वः धियो यो नः प्रचोदयात्', यह तीसरा चरण है॥ यज्ञही प्रेरणा करता है, अम्बिका स्त्रीही और रुद्र पुरुषही ये दोनों मिलकर चराचर जगत्की उत्पत्ति आदि करते हैं॥ गायत्री छंद बहुत हैं किन्तु मुख्य मंत्र यही वेदमें है, जो द्विजाति मात्र इस सावित्रीको जानता है वह पुनरागमनमयी मृत्युको नाश करके तरता है, सावित्रीके सायुज्यताको प्राप्त होता है॥

स त्रेधाऽऽत्मानं व्यकुरुत॥ अग्निं तृतीयम्॥ रुद्रं तृतीयम्॥ वरुणं तृतीयम्॥ स इन्द्रस्तुरीयमभवत्॥ तै. ब्रा. १।७।१।२–३॥

उस देवने अपने स्वरूपका तीन प्रकारसे विभाग किया, भूमीमें भुव, स्वकी अपेक्षासे अग्निको तीसरा किया, भू, स्व, की अपेक्षासे, (रुद्रं) वायुको अन्तरिक्षमें तीसरा किया, भू, भुवकी अपेक्षासे, द्यौमें सूर्यको तीसरा किया॥ सो प्रजापति इन्द्र नामवाला चतुर्थ पुरुष हुआ, यही शिव, रुद्र, इन्द्र, महेश्वर है॥

अथ सावित्र्यंगानि व्याख्यास्यामः॥ शिरो ब्रह्मा ललाटं द्यौश्चन्द्रादित्यौ चक्षुषी मुखमग्निर्जिह्वा सरस्वती त्वष्टा ग्रीवा वसवश्च रुद्राश्च बाहू उरः प्राणः पृष्ठमिन्द्रो विष्णुर्नाभिः प्रजापतिर्जघनमूरू मरुतो वेदाः पादौ स्मितं विद्युच्च सितं वायुरस्थीनि पर्वताः समुद्रा वासाꣳसि नक्षत्रा एवालंकारो य एवं वेद दुष्टता दुरुपयुक्ता न्यूनाधिका च सर्वस्या स्वस्ति देवऋषिभ्यश्च ब्रह्म सत्यञ्च पातु माम्॥ सामवेदीय देवता–अध्याय ब्राह्मणम्॥

अब सावित्रीरूपी विराट्के अङ्गोका वर्णन करते है॥ ब्रह्मा शिर, द्यौ ललाट, सूर्य चंद्रमा नेत्र, अग्नि मुख, सरस्वती जिह्वा, त्वष्टा कण्ठ, आठ–

वसु और ग्यारह रुद्र दोनों हाथ, प्राण हृदय, इन्द्र पीठ, विष्णु नाभी, जल-देवता जंघा, मरुत घुण्टन, वेद दोनोंचरण, बिजली हसना, श्वेतदेह वायु, हड्डी पर्वत, समुद्र मूत्रस्थान, और वह वस्त्रोंके सहित नक्षत्रही अलंकार है ॥ जो उपासक इस प्रकार गायत्रीके स्वरूपको जानता है कायिक मानसिक वाणीसे कमजास्ती सो, गायत्री सब पाप नाश करने-वाली और देव, पितर, ऋषियोंके ऋणसे मुक्त करके मेरेको सुखी करे, सत्य स्वरूप (ब्रह्म) गायत्री मेरा सर्वत्रसे पालन करे, ऐसा समजे ॥

गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शिरः ॥ श. ब्रा. १०।३।२।१॥ अग्नि-र्देवता गायत्री छन्दः ॥ तै. शा. ३।१।६।२॥

द्यौ शिर, गायत्री छंद, अग्नि देवता है ॥ गायत्री छन्दव्यापक रुद्र देवता है ॥

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयतां पावमानी द्विजानाम् ॥ आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वाव्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ अथर्वण १९।७१।१॥

मंत्रद्रष्टा ऋषि प्रत्यक्ष गायत्री देवताके दर्शन करके गायत्री जपके फलका वर्णन करता है ॥ मैं अथर्वण भौमऋषिने वेदाध्ययन और गायत्रीके जपमय स्तुतिसे गायत्री देवको प्रसन्न किया, वह देवता तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-द्विजातियोंके पापको नाश करके पवित्र करनेवाला, वेद रचनेवाला, विविध वर देनेवालेने मेरे लिये वर दिया. गायत्री देवने कहा—'हे ऋषे! तू जिस किसीको प्रसन्न होके वर देगा, तो मेरी कृपासे सिद्ध होगा, मरेको प्राण, निर्धनको धन, अप्रजको प्रजा, पशुरहितको पशु, यशहीनको यश, अल्पायुको पूर्ण आयु देगा,' इस प्रकार वर दिया, फिर मेरेको ब्रह्मतेजसे युक्त कर सब वर देकर, देवता ब्रह्मलोकको गया ॥ मेरे समान श्रद्धावाले द्विजाति-गणभी जपसे फल पायँगे ॥

देवा गन्धर्वा मनुष्याः पितरोऽसुराः॥ तै. आर. १०।२१।१॥ दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः ॥ असुर्यः शूद्रः ॥ तै. ब्रा. १।२।६।७॥ असतो वा एष सम्भूतः॥ यच्छूद्रः॥ अग्निहोत्रमेव न दुह्याच्छूद्रः॥ तै. ब्रा. ३।२।३।९।१०॥ शूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तो नहि देवता अन्वसृज्यत तस्मात्पादावुपजीवतः पत्तो ह्यसृज्यताम् ॥ तै. शा. ७।१।१।४॥ अनृतꣳ स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत॥ श. ब्रा. १४।१।१।३१॥ चत्वारो वै पुरुषा ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रः ॥ मै. शा. ४।४।६॥

देव पितर मनुकी सन्तानही विश्वेदेवा मनुष्य हैं, दैत्य, गन्धर्व ये पाँच जाति देव हैं ॥ अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति आदि देवताओंसे अग्निहोत्र-गायत्री-वेदाध्ययन आदि सम्बंध रखनेवाला वर्णही ब्राह्मण है ॥ अभक्षाभक्ष आदि राक्षस बलयुक्तही शूद्र है ॥ असत् चरणसे यह शूद्र उत्पन्न हुआ है, जो शूद्र वर्ण है सो शूद्र अग्निहोत्र, गायत्री, संध्यावंदन नहीं करे ॥ शूद्र यज्ञ करनेका अधिकारी नहीं है। शूद्रके साथ किसी देवता की उत्पत्ति नहीं हुई ॥ इसलिये घोडा और शूद्र पगसे गमनागमन करके अपनी जीविका चलावे, यही सेवा है ॥ क्योंकि ब्रह्मानें अपने पगसे शूद्र और घोड़ेको रचा है ॥ द्विजातिमात्र अनुष्ठान करते समय असत्यभाषी, स्त्री, शूद्र, कुत्ता, काग पक्षी है उनको न देखे ॥ चारों वर्णके पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ह ॥

अधोरामः ॥ अधोरामौ ॥ माध्यन्दिनीशाखा २९।५८।५९॥ सूर्य अस्तके समय रामः—कालेवर्णवाले नीचे ॥ नीचे काले वर्णवाले॥ रामा ॥ काठक शाखा २२।७॥ रामा इति शूद्रोच्यते कृष्णजातीया ॥ निरुक्त १२।१३।२॥

यह रामा शब्द, कृष्ण निकृष्ट जातिका शूद्र है ॥ भक्ष्याभक्ष्यविचार

-रहितही शूद्र है ॥ इस लिये ही वेदका अधिकार द्विजातिको है; और शूद्रको नहीं है ॥

ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद्धीनतरो भवेत्॥ न सुरां साधयेद्यस्तु आपणेषु ग्रहेषु च॥ न विक्रीणाति च तथा सच्छूद्रो हि स उच्यते॥ भविष्यपु. १।४४।३२।३३ ॥

वैदिक आचारहीन ब्राह्मण शूद्रसे भी हीन है, जो शूद्र घरमें और बहार भी दारूका सेवन नहीं करता है तथा वेचता भी नहीं वह सत् शूद्र है॥

सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषु शूद्रेषु च ॥ आथर्वणस्यं वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति ॥ आपस्तम्वधर्मसूत्रम् ॥२।११।२९ ११-१२॥

स्त्रीयोंमें और शूद्रोंमें जो विद्या है, सोही समाप्ति है, स्त्रीयोंमें कोमल, सरल, नम्र, गृहकार्यकुशलादि गुण हैं। स्त्री दो प्रकारकी एक ब्रह्म-वादिनी–अथर्वण वेदकी जो अध्यात्मविद्या है उसमें कुशल होती है, वह ध्यानयोग आदि ब्रह्मज्ञानकी अधिकारिणी है, और दुसरी अग्नि-होत्रकी सब्र सामग्री तैयार कर फिर पति अग्निहोत्र करे जब उसके पास बैठना और गृहकाम आदि अतिथि आदिका सत्कार करनेवाली, अतिथि-सत्कारादि करनाही गृहिणीका धर्म है॥ और शूद्र भी दो प्रकारका, सत शूद्रमें सत्य, शम, दम, शान्ति, निषिद्धकर्मरहित गुण हैं तथा असत शूद्रमें मर्यादारहित गुण होते हैं ॥ ब्राह्मणकी सेवासे गन्धर्वलोक, क्षत्रियकी सेवासे रक्षण, वैश्यकी सेवासे अन्नवस्त्र शूद्र पाता है ॥

वैदिको मिश्रिको वापि विप्रादीनां विधीयते ॥ तान्त्रिको विष्णुभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्तितः ॥ पद्म पु. ५।९५।७१॥

वेद और वेद अनुकूल मनु आदि स्मृतियोंकाही प्रमाण तीनों वर्णोंने अङ्गीकारनाही मिश्रित धर्म है ॥ और वैदिक अग्निहोत्र आदि धर्मरहित नामस्मरण, विष्णुपूजन, नृत्य, गीत आदि मनुष्यरचित ग्रन्थही तांत्रिक हैं, यह भक्तिमार्ग शूद्रका है ॥

अपहाय निजं कर्म रामकृष्णेतिवादिनः॥ ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥

यह श्लोक पद्मपु० पातालखण्डके २५०।२७॥ में था किन्तु कलिभक्तोंने निकाल दीया। अब विष्णुपुराणकी श्रीधरी टीकामें और शूद्र कमलाकर ग्रन्थमें है॥ जो द्विजातिमात्र तीनों वर्ण, वैदिक संध्या, गायत्री, प्रातःसूक्त, पावमान, त्रिसुपर्ण आदि वैदिक स्तोत्रोंका पाठ तथा नित्य अग्निहोत्र वैश्वदेवादि अपने धर्मको त्याग कर महिम्न, शिवसहस्रनाम, गीता, विष्णुसहस्र, गोपालसहस्र, रामरक्षा, राम २ कृष्ण २ की ध्वनि करते हैं वे तीनों वर्ण विष्णुसे द्वेष करनेवाला महापापी है, क्योंकि विष्णु वैदिक धर्मकी रक्षाके लिये अवतार लेता है, अवैदिक प्रजाका नाश करके वैदिक धर्मको स्थापन करता है॥ इस लिये प्रथम वैदिक कर्म करके पीछे गीता महिम्नका पाठ करे तो कोही दोष नहीं। फिर तो अधिकसे अधिक फल है॥ शूद्रके लियेही नामस्मरण आदि पौराणिक धर्म है॥ उसको वैदिक धर्मका अधिकार नहीं है॥

क्राते विष्णुं॥ मनुस्मृतिः १२।१२१॥ म. भा. १२।२३९।८॥ विष्णुः॥ म. भा. १२।३१३।१॥ पादावस्य .... विष्णुरा विशत्॥ श्रीमद्भागवतम् ३।६।२२॥

पगकी गतिमें विष्णुको जानो॥ पगचरणका देवता विष्णु है॥ इस विराट्के चरणमें विष्णुने प्रवेश किया॥

पादमभ्युक्षाति तेन विष्णुम्॥ बौधायनीयगृह्यसूत्रम् ७।४॥

पगका प्रक्षालन करता है, उस धोनेसे विष्णुको तृप्त–प्रसन्न करता है॥ चरणका देवता विष्णु है, और चरणसे शूद्र उत्पन्न हुआ है॥ इस लियेही शूद्रका मुख्य देवता विष्णु है, और दूसरे देवता गौण हैं॥

शूद्रं....अहं हि पश्यामि नरेन्द्र देवं विश्वस्य विष्णुं जगतः प्रधानम्॥ म. भा. १२।२९६।२८॥

पराशरने कहा–'हे नरेन्द्र ! हे मुनिगण ! सब जगतका कर्त्ता ब्रह्माका चरण शूद्रको कहते है, और मैं तो शूद्रको विष्णुका स्वरूप मानता हूँ॥ क्योंकि ब्रह्माके अङ्ग तो सब देवता हैं, अग्नि मुख, इन्द्र हाथ, मरुत जंघा, विष्णु चरण है ॥ ब्राह्मण अग्निरूप, क्षत्रिय इन्द्ररूप, वैश्य विश्वेदेवा और शूद्र विष्णुरूप हे ॥

निष्कृतिर्नहि वेदानां मंत्राणां कलिदोषतः ॥ कलिदोष-निवृत्त्यर्थं गायत्रीमाश्रयेद् द्विजाः ॥ ऋग्विधानम् १।७॥

कलियुगके प्रभावसे वेदमंत्रोंका सुगमतासे उद्धार नहीं है, चार गुणा पुरुषार्थ करनेसे फल मिलता है। जैसे एरण्डका फल पाँच मासमें और आँमका पाँच दश वर्षमें मिलता है तैसेही भूत, प्रेत, यक्ष, भूत्तक, सिद्ध पुरुषोंकी सेवासे शीघ्रफल मिलता है, वह फलभी अल्पसुखवाला है, और वैदिक अग्नि, इन्द्र, सूर्य, प्रजापति आदि देवताओंकी सेवासे बहुत कालमें अविनाशी फल मिलता है ॥ कालिके पाप नाश करनेके लिये तीनों वर्ण गायत्रीका आश्रय लेवें, जीस गायत्रीके जपसे इसलोक और परलोक में सुख मिलता है ॥

ऐन्द्री संध्यामुपासित्वा आदित्याभिमुखः स्थितः ॥ सर्वतीर्थेषु स स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ म. भा. १३।१२६।१५॥

जो सूर्य के सन्मुख खडा होकर प्रातःकालकी संध्याको करता है उसको सब तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य मिलता है, और वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥

अथ पुरुषप्रवरौ कृताह्निकौ भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् ॥ महाभारत कर्णपर्व ८। अ० ३०।१३॥

उत्तम वीर अर्जुन और कृष्ण दोंनोंने महायुद्धमें मध्याह्नकालकी संध्या, गायत्रीका जप समाप्त कर विधियुक्त सूर्यमण्डलमध्यवर्ती समर्थ रुद्रका पूजन किया ॥

उपास्य पश्चिमां संध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि ॥ वाल्मीकीय-रामायण आरण्यकाण्ड ३।११।६९॥

गोदावरी नदीपर लक्ष्मण भाइके सहित रामचंद्रने सायंकालकी जैसी वेदमें विधि है वैसीही आचमन, प्राणायाम, आवाहन, अर्घ्यप्रदान, उपस्थान, विसर्जन आदि संध्या किया ॥

स ध्यानपथमाविश्य सर्वज्ञानानि माधवः॥अवलोक्य ततः पश्चाद्दध्यौ ब्रह्म सनातनम् ॥तत उत्थाय दाशार्हः स्नातः प्रांजलिरच्युतः॥ जप्त्वा गुह्यं महाबाहुरग्निनाश्रित्य तस्थिवान्॥ म.भा. १२।५३।२ ७

उस मधुवंशी कृष्णने सब ज्ञानेन्द्रियों को रोककर फिर सनातन सूर्यस्थ रुद्रका ध्यान किया ॥ फिर ध्यानसे उठकर द्वारकावासी कृष्णने स्नान किया, फिर संध्याके समय दोनों हाथ जोडकर सूर्यका उपस्थान किया, फिर गुप्त गायत्रीमंत्रका जप करके फिर कृष्ण अग्निकुण्डके पास स्थित होकर अग्निमें आहुतियें देने लगा ॥

य एतां वेदगायत्रीं पुण्यां सवगुणान्विताम् ॥ तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ॥ म भा. ६।४।१६॥

हे धृतराष्ट्र ! यह गायत्री आठ प्रकृति, स्थोल विकार, चौवास तत्त्वरूप सब गुणोंसे युक्त है, उस पवित्र तथा कायकारणात्मक गायत्रीरूप ब्रह्मको, जो पुरुष ठीक २ जानता है, वह जन्ममरणसे छूट जाता है ॥

अत्रैवोक्ता सवित्रासीत्सावित्री ब्रह्मवादिषु ॥ म. भा. ५।१०८।१०॥

इस पूर्व दिशामें वेदवादियोंको सविताने गायत्रीका उपदेश दिया था ॥

सविता वै देवानामधिपतिः ॥ काठकशा. २६।१॥ ब्रह्म वै देवः सविता ॥ तै. शा. १।३।४।४॥

सविताही सबदेवताओंका स्वामी है ॥ ब्रह्मही सविता देव है ॥

अहीनाहाऽऽश्वत्थः सवित्रं विदांचकार ॥ स ह हꣳसो हिरण्मयो भूत्वा स्वर्गं लोकमेति ॥ आदित्यस्य सायुज्यम् ॥ यज्ञोपवीतं कृत्वाऽधो निपपात ॥ नमो नम इति ॥ स होवाच ॥मा भैषी-र्गौतम ॥ जितो वै ते लोक इति ॥ तै. ब्रा. ३।१०।९।११-१२-१३॥

अहीना ऋषिका पुत्र अश्वत्थ नामका था, उस यातिधर्म पालकने सूर्यवर्ती सावित्र अग्निस्वरूप चेतनको स्वस्वरूपसे ध्यान करके साक्षात्कार किया ॥ वह संन्यासी निश्चय जगतको असार जानकर, देहको त्यागकर पापपुण्यरहित अन्तमें भर्गात्मक हंस होगया, ज्योतिःस्वरूप सुखको प्राप्त हुआ । जैसे नादियें समुद्रमें अभेद रूपको प्राप्त होती है तैसेही ज्ञानी सूर्यके मध्यवर्ती रूपमें अभेद रूप—मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ गौतमने यज्ञोपवीतको धारणकर नित्य संध्या गायत्रीके जपके अन्तमें, सविताको वारंवार प्रणाम किया तब उस वैदिक संस्कारयुक्त गौतमपर प्रसन्न होकर रुद्र पुरुषने कहा—'हे गौतम ! त अब जन्ममरण आदि भयसे भयभीत मत हो, क्योंकि तेरा मेरे साथ अभेद ज्ञानयोग होगया है, तूने सूर्य लोकको जात लिया अर्थात् तू मेरा स्वरूप होगया' ॥

अहरहः सन्ध्यामुपासीत । यः सन्ध्यामुपासते ब्रह्मैव तदुपासते॥ श. ब्रा. २।४।५।१३॥ ऋतञ्च सत्यञ्च ब्रह्म चोंकारश्च त्रिपदाश्च गायत्रीं ब्रह्मणो मुखमपश्यत्तस्माद्ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य स योगे सन्ध्यामुपासते....सायं च प्रातश्च संध्यामुपासते॥षड्विंश ब्रा.४।५॥

जो द्विजातिमात्र नित्य संध्यारूप उपासना करता है, वह नित्य ब्रह्मकीही उपासना करता है ॥ ऋत, अग्नि और वायु और सत्य सूर्य है, येही भूर्भुवः स्वः ह ॥ इन तीनोंकी अभेद अवस्थाही प्रणव है, इस प्रणवका साक्षी चेतन पुरुषही चतुर्थ है, तुरीय मात्राके सहित तीनों मात्रारूप ॐही ब्रह्म है, अग्नि, वायु, सूर्यही तीन व्याहृति हैं, ये व्याहृतियें विशेष रूपसे चौवीस तत्त्वही तीनपादरूप गायत्री ब्रह्मका प्रतीकरूप

साकार उपासना है, मैं देखत हू ब्रह्मका कार्यक्रियामय देहका पूर्ण विकास है सोही चौवीस तत्त्व हैं ॥ इस लियेही द्विजातिमात्र दिन-रात्रकी संधीमें संध्याको करते हैं, सायंकालमें और प्रातःकालमें संध्या-रूप ब्रह्मकी उपासना करते हैं

अहरहरप्रयावम्भरन्तः ॥ मा. शा. ११।७५॥

प्रतिदिन प्रमादरहित संध्या अग्निहोत्रके लिये समिधा आदि हविः सम्पादन करे ॥

इति श्री गुर्जरदेशान्तर्गतराजपीपलासंस्थाननिवासिस्वामिश्री-शंकरानन्दगिरिकृतं परिशिष्टं भाषाटीकायां समाप्तम् ॥ १ ॥

॥ अथ प्रातःसूक्तप्रारंभः ॥

वसिष्ठऋषिर्जगती त्रिष्टुप् छन्द १ मंत्रके अग्नि आदि देवता, २ से ५ तक भग देवता और ७ का उषा देवता ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ॥ प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

हम द्विजातिमात्र प्रातःकाल, अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुणको आवाहन करते हैं और ब्राह्ममुहूर्तमें अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करते हैं, प्रातःकाल धनके स्वामी भगदेव, मार्गरक्षक पूषा, बृहस्पति, सोमलताका अभिमानी देव और सर्व दुःखनाशक रुद्रको बुलाते हैं ॥ १ ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधता ॥ आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥

जे संसारके धारक विजयी और उग्र द्यौके पुत्र है इस भगदेवको हम प्रातःकाल आवाहन करते हैं, दरिद्री स्तुतिकर्ता और धनी राजा दोनोंही भगदेवताकी स्तुति करते हुए, 'मेरेको भोगयोग्य धन देओ' ऐसी धनकी याचना करते हैं ॥ २ ॥

भगप्रणेतर्भगसत्यराधो भगे मां धियमुदवाददन्नः ॥ भगप्रणो जनय गोभिरश्वैर्भगप्रनृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

हे भग ! आप उत्तम नेता हो, हे भग ! तुम सत्य धन हो, हमको तुम मन इच्छित वस्तु देकर हमारी प्रार्थना सफल करो; हे भग ! तुम हमको गौ और घोडा द्वारा वृद्धिंगत करो; हे भगदेव ! आपकी कृपासे हम पुत्रादि द्वारा मनुष्यवान् होयँगे ॥ ३ ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ॥ उतोदिता मघवन्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

इस समय पहिलि वयके आरम्भमें (भगवन्) हे धनवान् भगदेव ! हम धनवान् हों और मध्य अवस्थामें भी धनवान् होवें, हे भाग्यके अभिमानी देव ! सूर्यका उदय और हमारी अस्तमय वृद्ध अवस्थामेंभी हम अग्नि इन्द्रादि देवोंकी अनुग्रह प्राप्त करें ॥ ४ ॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ॥ त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥

हे देवो ! भगही धनवान् होवे, हम भगके अनुग्रहसेही भगवान् होवें हे भग ! सब लोग आपको वारंवार आवाहन करते हैं, हे भगदेव ! तुम इस यज्ञमें हमारे अग्रगामी बनो, अर्थात् यज्ञके लिये धन दो ॥ ५ ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ॥ अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आवहन्तु ॥ ६ ॥

शुद्ध स्थानके लिये अश्वाभिमानी देवके समान उषा देवता हमारे यज्ञमें आवे, वेगशाली अश्वोंके रथकी तरह उषादेवी धनदाता भगदेवको हमारे सामने ले आवे ॥ ६ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ॥ घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

सब कल्याणोंसे अतिबडे और सेवनीय उषादेवी अश्व, गौ तथा वीर पुरुषोंस युक्त होकर, जलसिंचन करके सदा हमारे रात्रिजनित अन्धेरेको नाश करे, आप नित्य हम उपासकोंको मंगलात्मक सुखके द्वारा पालन करो ॥ ७ ॥

इस सूक्तको संध्या आदिके प्रथम पठन करे, इससे सर्व विघ्ननाश, दीर्घ आयु, धनप्राप्ति, घोडा, गौ, बकरी, मेष आदि की प्राप्ति होती है ॥ विधि–तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल, और तीन दिन विना-मांग खाय, तथा तीन दिन उपवास करे, हविषान्न, मूँगदाल, यव, गौदूध चावल, तलावमें उत्पन्न हुआ निवार, पशै, देवभात समा भोजन करे; यह प्राजापत्य महाव्रत सब पापोंका नाश करनेवाला है. बीचमें ओर कोइ व्रत आ जाय तो भी नहीं करना, अन्य व्रतके करनेसे पहिले आरम्भ किये हुए व्रतका खण्डन होता है, इसलिये व्रतमें व्रत नहीं करना ॥ नीच स्त्री पुरुषसे भाषण नहीं करना, तीनवार स्नान करके गायत्रीका जप करना, प्राजापत्यके अन्तिम दिनकी रात्रिमें, बारह दिनके जपका दशांश हवन करना, वेद वा गायत्रीका, नित्यजप करनेवाले उत्तम दो ब्राह्मण को भोजन कराना ॥ यह विधि सब व्रतोंमें जानना ॥ व्रतके पश्चात् ७ सातवार वा तीनवार या एक वार प्रातःसूक्त पढे तो सब काम पूर्ण होता है ॥

इति श्रीगुर्जरदेशान्तर्गतराजपीपलासंस्थाननिवासिस्वामिश्री-शंकरानन्दगिरिकृतभाषाटीकासहितं प्रातःसूक्तं समाप्तम् ॥ १ ॥

॥ अथ अग्निसूक्तप्रारंभः ॥

मधुच्छन्दा ऋषिर्गायत्रीछन्दांसि अग्निर्देवता सुखार्थे विनि० ॥

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

यज्ञके (पुरोहितं) सबके पहिले स्थित, प्रकाशमान, देवोंको आवाहन करनेवाले होता सप्तजिह्वावाले अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत॥ स देवाँ एह वक्षति॥२॥

अनादि कालसे ऋषियोंने जिसकी स्तुति करी थी, इस समय ऋषि जिसकी स्तुति करते हैं, सो अग्नि इस यज्ञमें देवोंको बुलावे ॥ २ ॥

अग्निनारयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम् ॥३॥

अग्निकी कृपासे यजमानको धन मिलता है सो धन प्रतिदिन बढ़ता है और यशरूप होता है, तथा उससे अनेक श्रेष्ठ पुरुषोंका पालन किया जाता है ॥ ३ ॥

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति ॥४॥

हे अग्निदेव ! जिस यज्ञको आप सर्वत्रसे घेरते हो, उसमें राक्षसादि-द्वारा हिंसक कर्म नहीं होता, और सोही यज्ञ देवताओंको तृप्त करनेके लिये स्वर्गमें जाता है—अथवा देवोंका सन्निकर्ष प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः॥ देवो देवेभिरागमत्५

हे अग्निदेव ! तुम सम्पूर्ण ज्ञानसम्पन्न, सत्यस्वरूप, महायशयुक्त और प्रकाशमान हो, देवोंके संग इस यज्ञमें आओ ॥ ५ ॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि॥ तवैतत्सत्यमङ्गिरः ॥६॥

हे अग्नि ! आप जो आहुति देनेवाले यजमानका कल्याण—साधन करते हो सो मंगल है, हे सर्वत्र गमन करनेवाले ! वास्तवमें आपही प्रेमसाधक हो ॥ ६ ॥

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धियावयम्॥ नमो भरन्त एमसि७

हे अग्निदेव ! हम प्रतिदिन—रात दिन अन्य स्थानसे आपको नमस्कार करते २ आपके पास आते हैं ॥ ७ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ॥ वर्धमानं स्वेदमे॥८॥

हे अग्नि ! आप कर्मफलके प्रेरक, यज्ञके रक्षक, प्रकाशमान, और यज्ञशालामें वृद्धि करनेवाले हो ॥ ८ ॥

सनः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ॥ स च स्वानः स्वस्तये ॥ ९ ॥ ऋ० १।१।१ -९॥

जिस प्रकार पुत्र पिताको सहजमें पाता है, उसी प्रकार हम भी आपको प्राप्त कर सकें, वा आप हमारे अनायास लभ्य बनो, तथा हमको सुख करनेके लिये हमारे समीप वास करो ॥ ९ ॥ इस सक्तके पाठ करनेसे सब भय नाश होते हैं ॥

तान्येतान्यष्टौ अग्निरूपाणि कुमारो नवमः॥ श. ब्रा.६।१।३।१॥

अग्निके आठ स्वरूप—रुद्र, शर्व, उग्र, पशुपति, भव, अशनि, महादेव, ईशान, नवमा स्कन्द है ॥ अग्निइन्द्रसोमकी समष्टिरूपही एक अद्वितीय शिव है ।

अग्नि वैं यज्ञमुखम् ॥ त. ब्रा. १।६।१।८॥

अग्नि ही विराजात्मकप्रजापतिका मुख है ॥

अग्निर्वै सर्वा देवताः ॥ ऐ० बा० २।३॥

अग्नि ही सर्व देवोंमें तेजः प्रकाशरूपसे व्यापक है, सब देवरूप अग्नि ह ॥

अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा ॥ श. ब्रा. १४।३।२।५ ॥

जैसे देहका प्राण आत्मा है, तैसेही सब देवोंका प्राणधारक अग्नि है ॥

अग्निर्वै देवानां मुखम् ॥ कौ. ब्रा. ३।६॥

समस्त ब्रह्माण्ड प्रजापतिका देह है, इस शरीरमें सब देवता इन्द्रियोंके स्थानापन्न है, जैसे अपने मुखसे खाकर देहास्थित सबही इन्द्रियोंका पोषण होता है, तैसेही अग्निहोत्रमुखसे आहुति भक्षण करके समस्त ब्रह्माण्डवर्ती देवता तृप्त होते हैं ॥

प्रजापतिर्देवताः सृजमानः अग्निमेव देवतानां प्रथममसृजत ॥ तै. ब्रा. २।१।६।४॥

ब्रह्माने देवोंकी रचना किया, उन दवताओंके पहिले अग्निकोही रचा, फिर देवोंको उत्पन्न किया ॥

अग्निर्वै सवमाद्यम् ॥ ताण्ड्यब्रा. २५।९।३

सबके प्रथम अग्निदेवही है ॥

अग्नौ हि सर्वा देवता इज्यन्ते ॥ कपि० शाखा ३८।६॥

अग्निहोत्ररूप मुखमेंही सब देवता हविसे पूजे जाते हैं ॥

अग्निना वै देवा अन्नमदन्ति ॥ कपि. शा. ६।९॥

अग्निके द्वाराही देवता भोजन करते है ॥

अग्निं देवतानां प्रथमं यजेत् ॥ कपि. शा. ४८।१६॥

सब देवोंके पहिले अग्निका पूजन करे ॥

इति श्रीगुर्जरदेशान्तर्गतराजपीपलासंस्थाननिवासिस्वामिश्री-शंकरानन्दगिरिकृतभाषाटीकासहितम् अग्निसूक्तं समाप्तम् ॥

॥ अथ इन्द्रसूक्तप्रारम्भः ॥

वामदेवऋषिर्गायत्री छन्दः इन्द्रो देवता ॥

नकिरिन्द्रत्वदुत्तरोनज्यायाँ अस्ति वृत्रहन ॥ नकिरेवा यथान्वम् ॥ १ ॥ ऋ. ४।३०।१॥

हे वृत्रनाशक इन्द्र ! आपकी अपेक्षा लोकमें कोईभी अतिश्रेष्ठ नहीं है, आपके समान कोई भी प्रशस्यतर नहीं है, हे इंद्र ! आप जिस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध हो उसप्रकार कोई भी नहीं है ॥

पुरुहन्मा ऋषिः उष्णिक् छन्दः इन्द्रो देवता ॥

यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुतस्युः ॥ न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जाततमष्ट रोदसी ॥२॥ ऋ. ८।५९।५॥

हे इन्द्र ! यदि सैंकडों द्युलोक हो जायँ तोभी आपको घेर नहीं सकते, यदि सहस्रों पृथिवियाँ हो जायँ तो भी आपको नाप नहीं सकती, यदि सूर्य भी असंख्य हो जायँ तो भी आपको प्रकाशित नहीं कर सकते, इस ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जन्म हैं वे और द्यौ भूमी आपकी सामी नहीं कर सकते ॥

अश्वसूक्तिर्ऋषिः उष्णिक् छन्दः इन्द्रो देवता ॥

शात्वांविष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ॥ त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३॥ ऋ. ८।१५।९॥

हे इन्द्र। बडे स्थानवाले, मित्र, विष्णु, वरुण, आपकी स्तुति करते हैं, मरुत्–गण आपके बलकी प्रभुताके अनन्तर प्रसन्न होते हैं ॥

हरिन्त्रिठिर्ऋषिर्गायत्री छन्दः इन्द्रो देवता ॥

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः ॥ इन्द्रं वर्धान्ति क्षितयः ॥ ४ ॥ ऋ. ८।१६।९

मंत्रद्रष्टा तथा मनुष्य अध्वर्युगण यज्ञरूप पूजासाधक यजुर्वेदीय मंत्रोंद्वारा इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं, तथा उद्गातागण सामवेदीय मंत्रोंद्वारा गायनसे वृद्धि करते हैं, और होतागण गायत्री आदि छन्दयुक्त ऋग्वेदीय मंत्रोंद्वारा प्रशंसा करते हैं ॥

सत्यरूप इन्द्र है ॥ ऋ. २।२२।३॥ सब देवोंके पहिले इन्द्रको आहुति है ॥ ऋ. २।३६।१॥ उत्तम स्वर्गवासी इन्द्र है ॥ ऋ. ३।३२।२॥ इन्द्रने तीनों लोकोंको धारण किया है ॥ ऋ. ३।३२।१॥

पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि ॥ ऋ. ६।१७।११॥

विष्णु और पूषाने सोमरसके तीन कलश इन्द्रको पिळाये ॥

अग्निर्वै देवानां प्रथमम् ॥ इद्रो वै देवता द्वितीयम् ॥ ऐ. ब्रा. २०।१-२।१-२॥

देवोंमें पहिला अग्नि और दूसरा इन्द्र है ॥

यो वै वायुः स इंद्रो य इन्द्रः स वायुः ॥ श. ब्रा. ४।१।३।१९॥

जो वायु अन्तरिक्षका देवता है सोही इन्द्र है, जो इन्द्र स्वर्गका देवता है सोही वायु है ॥ एकही देव अन्तरिक्ष और स्वर्गभेदसे दो हैं, यही सूर्यका प्रकाशक है ॥

गृत्समद ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता सर्वसुखप्राप्त्यर्थे विनियोगः ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ॥ यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्यमह्ना सजनासइन्द्रः ॥ १ ॥

देव, दैत्य, पितर, राक्षस, गन्धर्व, ये पाँच देवजाति है, और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, ये पाँच मनुष्यजाति हैं, इन दशके सहित जो प्रकाशित है उस इन्द्रने जन्मके साथही देवताओंमें तथा मनुष्योंमें प्रधान होकर वीर कर्मद्वारा, सब देवोंको विभूषित किया था, जिसके देहबलसे द्यौ भूमी भयभीत हुई थी, आर जो बडी सेनाके सेनापति थे सोही इन्द्र है ॥ १ ॥

या वीर्याणि प्रथमानि ॥ ऋ. १०।११३।७ ॥ विश्वानमन्त कृष्टयः ॥ ऋ. ८।६।४॥ अरेणु ॥ ऋ. १।५६।३॥

जिन वीरोंकी गणनामें मुख्य नाम इन्द्रका है ॥ सब मनुष्य इन्द्रको प्रणाम करते हैं ॥ इन्द्र दोषशून्य है ॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ॥
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् सजनासइन्द्रः ॥ २ ॥

हे मनुष्यो! जिसने कम्पित भूमीको स्थिर किया है, जिस इन्द्रने क्रोधित पर्वतोंको स्थिर किया है; जिसने प्रचण्ड अन्तरिक्षको बनाया है, और जिसने द्युलोकको स्तम्भित किया है, सोही इन्द्र है ॥ २ ॥

विव्याचसततनापुरूणि॥ऋ.३।३६।८॥ एको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ऋ.३।४६।२॥ नमो अस्य प्रदिव एक ईशे॥ ऋ.३।५१।४॥ क ईशानं न याचिषत् ॥ ऋ. ८।१।२०॥

एकही इन्द्र असंख्य यज्ञोंमें व्यापक है ॥ एकही इन्द्र सब जगत्का ईश्वर है ॥ इस अन्नके जो एक ईश्वर है उस इन्द्रको मेरा नमस्कार है ॥ संसारमें ऐसा कौन है जो आप ईश्वरसे याचना नहीं करता—इन्द्र दाताके सब भिक्षुक हैं ॥

अविप्रेचिद्वयोदधदनाशुनाचिदर्वता ॥ ऋ. ६।४५।२॥

अग्नि, इन्द्र, सूर्यका उपासकही विप्र है और दूसरे अनार्य दास है। जो मनुष्य इन्द्रकी स्तुति नहीं करता उस जातिको भी भगवान् इन्द्र अन्न देता है ॥

यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि निद्विता ॥ ऋ. ६।४५।८॥

जिस इन्द्रके दोनों हाथोंमें पार्थिव (सुवर्ण, गौ, अजा, मेष, अश्व, पुत्रादि धन और दिव्य स्वर्ग, मोक्ष, ब्रह्मलोकमें ज्ञानीको पहुँचाना है) धन है, ऐसा वारंवार ऋषि कहा करते हैं ॥

मह्नाविव्यकूपृथिवीं ॥ ऋ. ७।१८।८॥

इन्द्रकी कृपासे सुदास जगत्व्यापक हुआ ॥

आध्रेण० ॥ ऋ. ७।१८।१७॥

इन्द्रने उस समय दरिद्र सुदासके द्वारा एक काम कराया था,

अति बली सिंहको बकरीसे मरवाया, सूइसे स्तम्भ आदि बडे काष्ठको काट दिया था, सब धन सुदासको दिया था ॥

यो हत्वा हिमरिणात्सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ॥ यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु सजनासइन्द्रः ॥३॥

हे दैत्य, मनुष्यो ! जिसने वृत्रका नाश करके सात नदियोंको प्रवाहित किया है, जिसने बलदैत्यकी रोकी हुई गायोंका उद्धार किया था, जो दो मेघोंके मध्यसे विद्युत्को उत्पन्न करता है, तथा जो युद्धभूमीमें शत्रुओंका नाश करता है सोही इन्द्र है ॥ ३ ॥

इन्द्रवृत्रहन्तमः ॥ ऋ. ८।८९।१७॥ पाप्मा वै वृत्रः ॥ श. ब्रा. ११।१।५।७॥ पाप्मा वै नमुचेः शिरः ॥ मै. शा. ४।४।४॥

हे इन्द्रदेव अधिक पापनाशक ! ॥ पापही वृत्रदैत्य है ॥ अन्धकारके अभिमानी दैत्यका शिर-मोहात्मकही पाप है ॥

आपो वै वृत्रः आपो वै रात्रिः ॥ गिरिर्वै वृत्रः ॥ मै. शा. ४।५।१॥

अन्तरिक्षस्थ निरुद्ध जलही वृत्र है । रात्रिका व्यापक अन्धकारही पाप है । मेघोंमें रुका हुआ जलही वृत्र है । जलनिरुद्धक सत्ताका एक अभिमानी देवताही वृत्र है ॥

इन्द्रस्त्केयत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ॥ ऋ. १।३२।१२॥

हे इन्द्र ! जब आपके वज्रके ऊपर त्रिलोकव्यापी अन्धकारके अभिमानी, एक (देवः) वृत्रदेवताने प्रहार किया ॥ त्रिलोकवर्ती प्रकाशके देवताका नाम इन्द्र है ॥

अहश्च कृष्णमहरर्जुनम् ॥ ऋग्. ६।९॥१। तमो वै कृष्णम् ॥ कृष्ण श्वेतः॥ ऋग् १०।२०।९॥ तमो वै स्वर्गं ॥ मै. शा.३।३।४॥ मै. शा. ।२५।६॥ अर्जुनो ह वै नामेन्द्रः ॥ श. ब्रा. ५।४।३।७॥

(कृष्णं) अन्धकाररूप वृत्र है और (अर्जुनं) प्रकाशमय इन्द्र

है ॥ रात्रिरूप कृष्ण तथा दिनरूप अर्जुन है ॥ कृष्णरूप अन्धकारही तम है ॥ इंद्रका नामही अर्जुन है ॥ अन्धकार काला और प्रकाश श्वेत है ॥ तमरूप दुःखका अन्तही स्वर्ग है ॥

देवाः शुक्ला अभवन् ॥ कृष्णा असुराः ॥ दिवा देवानसृजत ॥ नक्तमसुरान् ॥ मै. शा. १।९।३॥

भगवान् पितामहने देवोंके लिये उत्तरायणरूप दिन रचा, और दैत्योंके लिये दक्षिणायनरूप रात्रि रची; श्वेतप्रकाश देवोंका हुआ, और कृष्ण अन्धकार दैत्योंका हुआ ॥

स्वाध्योदिवआसप्तयह्वी० ॥ मह्नामहद्भिः पृथिवी वितस्थे मातापुत्रैरदितिर्धायसेवेः ॥ ऋ. १।७२।८-९॥

सुन्दर कर्मसम्पन्न विशाल सात नदियें द्युलोकसे निकली हैं (सात किरणोंही सात सात ऋतु भेदसे) ये सब नदियाँ अग्निद्वारा स्थापित हैं ॥ अदिति नामक सब जगत्के धारणके लिये उन पृथिवीमाताने महानुभव पुत्रोंके साथ जो महत्त्व प्राप्त किया सो वसन्तका धाता, ग्रीष्मका बृहस्पति, वर्षाका इन्द्र, शरदका अग्नि और हेमन्त और शिशिर ऋतुका अश्विनीकुमार है । अथर्व ११।१०।५॥ मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष, अंश, ये छ हैं । ऋ. २।२७।१॥

आदित्याः सप्त ॥ काठक शा. ११।६॥

सात ऋतुओंके अभिमानी धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र ये सात आदित्य हैं और आठमाँ विवस्वान् सूर्य है ॥ अग्निरूप अदितिके पुत्र आठ हैं ॥ ब्रह्मा, अग्नि, वायु, सूर्य, भूमी, द्यौ, अन्तरिक्षका नाम अदिति है ॥

कतमऽआदित्या इति ॥ द्वादशमासाः संवत्सरस्यैतऽआदित्याः ॥ श. ब्रा. ११।६।३।८॥

'आदित्य कितने हैं ?' ऐसा प्रश्न किया। संवत्सरके बारह महिने येही आदित्य हैं॥

त्रिःसप्त यद्गुह्यानि ॥ ऋ. १।७२।६॥

हे अग्नि! आपके मध्यमें एकविंशति स्थित यज्ञोंको यजमानोंने जाना है॥ विश्वेदेवोंके सम्बंधके सात पाकयज्ञ, अग्न्याधेय, दर्शपूर्णमास आदि सात हविर्यज्ञ, और अग्निष्टोम, अति अग्निष्टोम आदि सात सोमयज्ञ है॥ दूसरी प्रकार एकविंशति नदियाँ, ऋग्. १०।७५।५॥ और तीन लोक, पाँच ऋतु (हेमन्त शिशिर एक है), बारह महिना तथा एकविंशति सूर्यमण्डल है॥ सूर्यकी सात किरणोंको जब इन्द्र खोलता है, तब ही हेमको त्याग कर सात महानदियें पिघलकर वेहने लगती हैं॥ मेघको हटाकर किरणरूप गौओंका उद्धार किया॥

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः॥ श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि सजनासइन्द्रः ॥४॥

हे मनुष्यो! जिसने सब जगत्की रचना करी है, जिसने दासोंको निकृष्ट और अन्धकारस्थानमें स्थापन किया है, जो निसाना जीतकर व्याधके समान शत्रुके सब धनको हरण करता है, सोही इन्द्र है॥ जलवर्षासे सब प्रजाको रचा है और महिमावान्के चेतमें अभेद होनेसे, इन्द्रही ब्रह्मारूपसे सृष्टिकर्ता है। जलरोधक मेघोंकी जलरूप धन हरण करके मेघोंको अन्तरिक्षके अन्धकार भागमें ढकेल दिया॥ ४॥

इन्द्र ज्येष्ठं... ओजिष्ठ॥ऋ.६।४६।५॥ इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठः॥ कपि. कठशा. ३७।४॥ सतां ज्येष्ठतमः॥ ऋ. २।१६।१-२॥

हे इन्द्र! तुम देवोंमें अतिउत्तम बलवान् हो॥

परमैश्वर्यसम्पन्न इन्द्रही देवोंमें बलवान् है॥

उत्तम ऋषियोंमें भी श्रेष्ठ पूज्य है॥

यं स्मापृच्छान्ति कुहसेतिघोरमुते प्राहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ॥ सो अर्यः पुष्टीर्विजइवामिनाति श्रदस्मैधन्तसजनास इन्द्रः ॥ ५ ॥

हे दैत्यो ! जिस भयंकर देवके सम्बन्धमें लोग जाननेकी इच्छा करते हैं, सो कहाँ है ? जिसके विषयमें जनसमूह बोलता है, 'वह इन्द्र नहीं है,' तथा जो शासकके समान शत्रुओंका सब धन नाश करता है, विश्वास करो सोही इन्द्र है ॥ ५ ॥

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः। युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य सजनासइन्द्रः ॥६॥

हे मनुष्यो ! जो समृद्ध धनप्रदान करता है, जो दरिद्रयाचक और स्तोताको धन देता है, तथा जो सुन्दर नासिकायुक्त रूपधारी, सोम-लताको पत्थरके द्वारा दोनों हाथोसे कूटनेवाले यजमानके रक्षक है, सोही इन्द्र है ॥ ६ ॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः। यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता सजनासइन्द्रः ॥ ७ ॥

हे दैत्यो ! घोडे, गौयें, गाँम, और रथ जिसकी आज्ञाके वश हैं, जो सूर्य और उषाको उत्पन्न करता है, तथा जो जलकी वर्षा करता है, सोही इन्द्र है ॥ ७ ॥ सूर्यमण्डलप्रेरक अन्तर्यामी इन्द्र है ॥

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेवर उभया अमित्राः। समानंचिद्रथमातास्थिवांसानानाहवेते सजनासइन्द्रः ॥ ८ ॥

हे देव, दैत्य, मनुष्यो ! दो सेनादल परस्पर मिलनेपर जिसको बुलाता है, उत्तम, अधम दोनों प्रकारके शत्रु जिसको बुलाते हैं, तथा एकही तरहके रथोंपर बैठे हुए दो मनुष्य जिसको अनेक प्रकारसे बुलाते हैं सोही इन्द्र है ॥ ८ ॥ एक यज्ञवेदीपर बैठे होता और यजमान आवाहन करते हैं ॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युद्धमाना अवसेहवन्ते ॥
यो विश्वस्य प्रतिमानं वभूव यो अच्युतच्युत्सजनासइन्द्रः ॥९॥

हे मनुष्यो ! जिसके स्थित न रहनेसे कोई विजयी नहीं हो सकता, युद्धकालमें रक्षाके लिये जिसको लोग बुलाते हैं, जो सब जगत्का प्रतिनिधि है, अर्थात् एक समष्टिस्वरूप इन्द्रही व्यष्टि शरीरोंका जीवरूप प्रतिनिधि है, और जो नाशरहित मेघोंको भी नष्ट करता है, सोही इन्द्र है॥९॥

आत्मा ते वातः ॥ ऋ. ७।८७।२॥

हे तमवारक सूर्य ! आपका आत्मा वायुरूप इन्द्र है ॥

ईशानाय प्रहुतिं...तुभ्यं वायो ॥ ऋ. ७।९०।२॥

हे वायु। तुमही ईश्वर हो, जो यजमान आपको उत्तम आहुति देता है ॥ समष्टि सूक्ष्म देहही वायु और उसका अभिमानी चेतन इन्द्र है ॥

यावांशतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्र वायु विश्ववाराः सचन्ते ॥ ऋ. ७।९१।६॥

विशेष चेतनका प्रकाश वायुरूप प्राण के द्वारा आर वायुरूप सूक्ष्म देहका प्रकाश चेतन के द्वारा है ॥ हे वायु ! इन्द्र आपके जे असंख्य घोडे होकर तुम दोनोंकी सेवा करते हैं, वेही अश्वरूप इद्रियाँ अध्यात्म अधिदैवरूपोंसे आप दोनों समष्टियोंकी प्रख्याति करती हैं ॥

इन्द्र इन्द्रियैः ॥ ऋग्. १।१०७।२॥

हे इन्द्र ! आप असंख्य इन्द्रियरूप अश्वों के द्वारा आओ ॥

अच्युतमिन्द्रम् ॥ ऋ. २।३।३॥

अपने अद्वितीय स्वरूपसे रूपान्तर न होता हुआ भी प्रतीत होवे एसे अद्भुत इन्द्रको जानो ॥

त्वं सत्य इन्द्र ॥ ऋ. १।६३।३॥

हे इन्द्र! आप सत्य ज्ञानरूप हो॥ हे इन्द्र! आपके दो, चार, आठ, दश घोडे हैं (कारणकार्यचतुष्टय अन्तःकरण, षड्विकार—छ ऋतु, या मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियें, आठ दिशा या अष्टधातु—दश प्राण हैं) ऋ. २।१८।४॥

यःशश्वतोमह्येनोदधानानमन्यमानाञ्छर्वाजघान॥ यः शर्धते नानुददाति शृध्यां योदस्योर्हन्तासजनासइन्द्रः॥१०॥

हे मनुष्यो! जिसने वज्रसे अनेक महापापी अपूज्योंका नाश किया है, जो गर्वहारी मनुष्योंको सिद्धि देता है, और जो यज्ञद्वेषी दासोंको मारता है सोही इन्द्र है॥ १०॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्॥ ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं सजनासइन्द्रः॥११॥

हे दैत्यो! जिसने पर्वतमें छिपे शम्बरको चालीस वर्ष खोज कर प्राप्त किया था तथा जिसने बलप्रकाशक वृत्रको सोये हुए दैत्यका नाश किया था सोही इन्द्र है॥ ११॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तु विष्मानवासृजत्सर्तवे सप्तसिन्धून्॥ यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं सजनासइन्द्रः॥ १२॥

हे दैत्यो! जो सातवर्ण—वराह, स्वपत, विद्युत्, महःघू, स्वापि, ग्रहमेध आदि सात किरणोंवाले अभीष्टवर्षी, और बलवान् पर्जन्य है, जिसने सात नदियोंको प्रवाहित किया है, तथा जिसने वज्रबाहु होकर स्वर्ग जानेको तैयार रौहिणको नाश किया था सोही इंद्र है॥ १२॥

द्यावाचिदस्मै पृथिवी नमेतेशुष्माच्चिदस्य पर्वता भयंते॥ यः सोमपानिचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः सजनासइन्द्रः॥ १३॥

हे दैत्यो! द्युलोक और भूमी इन्द्रको प्रणाम करती है, उसके बलके

सामने पर्वत काँपते हैं, और जो सोमपान कर्ता दृढाङ्ग वज्रबाहु तथा वज्रयुक्त है, सोही इन्द्र है ॥ १३ ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ॥
यस्य ब्रह्मवर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः सजनासइन्द्रः ॥१४॥

हे मनुष्यो ! जो सोमाभिषव कर्त्ता यजमानकी रक्षा करता है, जो पुरोडाश आदि पकानेवाले, तथा स्तुतिपाठक यजमानकी रक्षा करता है, और जिसकी वृद्धि करनेवाला (ब्रह्म) स्तोत्र तथा हमारा अन्न है सोही इन्द्र है ॥ १४ ॥

यः सुन्वते पचते दुध्र आचिद्वाजं दर्दर्षि सकिलासिसत्यः ॥
वयन्त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम ॥ १५ ॥
ऋग्० २।१२।१—१५ ॥

हे इन्द्र देव ! आप दुर्धर्ष होकर सोमरस तैयार कर्त्ता तथा पाककारी यजमानको अन्नप्रदान करते हो, इस लिये तुम सत्य हो, हम, प्रिय तथा वीर पुत्र पौत्र आदिसे युक्त होकर चिरकाल तक आपके स्तोत्रका पाठ करेंगे ॥ १५ ॥

विधि-तीन रात्रि उपवास, सौ प्राणायाम करे, मौन रहे, फिर 'यो जात,' सूक्तका जप करे, धर्म, बुद्धि, पुत्रादि धनकी वृद्धि होवे, और सब पाप नाश होवे ॥ मरणके अनन्तर स्वर्गप्राप्ति होवे ॥

इति श्रीगुर्जरदेशान्तर्गतराजपीपलासंस्थाननिवासिस्वामिश्री-
शंकरानन्दगिरिकृतभाषाटीकासहितम्
इन्द्रसूक्तं समाप्तम् ॥

॥ अथ ऋग्वेदीयत्रिकालसंध्याप्रारम्भः ॥

अथ प्रातःसंध्या

पहिले प्रातःकालमें, ईशानदिशाके सन्मुख, आसनपर बैठकर वाम-हाथमें शुद्ध हवनकी भस्मको निम्नमंत्रोंसे वाम हाथमें लेके दहिने हाथसे सम्पुट करे ॥

अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । सर्वꣳह वा इदं भस्म । मन एतानि चक्षूꣳषि भस्मानीति ॥ अथर्वशिरोपनिषद् ॥५॥

भूमी, जल, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, चंद्रमा सूर्यके सहित नक्षत्रगण, यह सबही जगत् मायिकका भासरूपी भस्म है । निम्नमंत्रसे भस्म मले ॥

प्रसह्यमंत्रस्य त्रिरूपऋषिर्मार्ष्यनुष्टुप् छन्दः अग्निर्देवता भस्म-मिश्रणे विनियोगः ॥ ॐ प्रसह्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ॥ संगत्य मातृभिष्ट्वा ज्योतिष्मान्पुनरासदः ॥ मै. शा. २।७।१०॥ कपि. शा. २५।१॥ कण्व शा. १३।३८॥ मा. शा. १२।३८ ॥

हे अग्निदेव ! तुम भस्मरूपसे विस्तृत यज्ञवेदीमें हो और व्यापक रूपसे द्यौमें मिलकर सूर्य हो, तथा अन्तरिक्षमें मेघस्थित जलोंके द्वारा विद्युत्को स्वकर, फिर अपने उत्पत्तिकारण शमीवृक्षोत्पन्न पिप्पलमें आगमन करो ॥ जलमें भस्मको छोडकर अनामिका अङ्गुलीसे ग्रहण करके आहुति देनेके पाछे ललाटमें लगावे और वैश्वदेवके पीछे भी लगावे ॥ यह विधि परंपरा वैदिक है ॥

दिवं ते धूमो गच्छत्वन्तरिक्षं ज्योतिः पृथिवीं भस्म स्वाहा । मै. शा. १।२।१४॥ कपिशा. २।१०॥

हे अग्निदेव ! आपका यज्ञमय धूम द्युलोकमें जाता है, अन्तरिक्षमें विद्युत् ज्योति है, और भूमीमें स्वाहाकारका शेष भाग भस्म है ॥

भस्म प्रतिपूर्येताप्सु प्रवेशयेदापो वा अग्नेर्योनिः ॥ मै० शा० ३।२।२ ॥ कपि०शा० १९।१२ ॥

अग्निका स्थान जल है, अग्निको जलमें प्रवेश करे अर्थात् अग्निरूप भस्मको जलमें डाले फिर मर्दन करके लगावे ॥

भस्मना ॥ ऋ० १०।११५।२ ॥

ज्योति, तेज, सार, प्रकाश ही भस्म है ॥

आग्नेयं भस्मना:स्नानम् ॥ पराशरस्मृतिः १२।१० ॥ भस्मशायिनी ॥ वा० रा० १।४८।३० ॥ भस्मशायिनः ॥ म० भा० १२।१९२।१ ॥ स्नायीत भस्मना ॥ म० भा० ३।८४।९२ ॥

भस्म लगानाही अग्निस्नान है ॥ गौतमपत्नी भस्ममें जप, ध्यान और शयन करती थी ॥ वानप्रस्थ भस्ममें शयन करते हैं ॥ चारों वर्णाश्रम गृध्रवटमें भस्ममें स्नान करे तो बारह वर्ष चीर्णव्रतका पुण्य मिलता है ॥

फिर निम्न मंत्रसे भस्म लगावे ॥

ॐ त्र्यायुषमंत्रस्य नारायण ऋषिः उष्णिक् छन्दः रुद्रदेवता भस्मधारणे विनियोगः ॥ ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः—ललाटे ॥ ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषं—ग्रीवायाम् ॥ अगस्त्यस्य त्र्यायुषं—दक्षिणबाहुमूले ॥ ॐ यद्देवानां त्र्यायुषं—हृदये ॥ ॐ तन्मे अस्तु त्र्यायुषं—सर्वाङ्गे ॥ सामवेदीयमंत्रसंहिता १।१० ॥ मा० शा० ३।६२ त्र्यायुषं० ॥ इति भस्मनाङ्गानि संस्पृश्य ॥ मानवगृह्यसूत्रं १।२४॥ पारस्करगृह्यसूत्रं २।४।४ ॥

हे तुरीय रुद्र ! जैसे जमदग्निरूप अग्निकी तीनों अवस्था हैं, अगस्त्यात्मक वायुकी तीन अवस्था हैं, कश्यपस्वरूप सूर्यकी तीन अवस्था

हैं, तथा देवताओंकी रोगरहित युवा अवस्था है, वह ज्ञानादि तीनों अवस्था मेरेको और मेरे सम्बन्धी मित्रादि कुटुम्बको प्राप्त होवें॥

निम्नमंत्रसे रुद्राक्षमाला धारण करे॥

ॐ मानस्तोके मंत्रस्य त्रितऋषिः जगती छन्दः रुद्रदेवता अक्षमालाधारणे विनियोगः॥ ॐ मानस्तोके तनये मान आयौ-मानो गोषु मानो अश्वेपुरीरिषः॥ वीरान्मानो रुद्रभामितो वधीर्हे-विष्मन्तः सदमित्वा हवामहे॥ ऋग् १।११४।८॥

जैसे सूत्रमें मणियोंका परस्पर सम्बन्ध होता है, तैसेही मेरे मनरूपी सूत्रमें मेरे हितैषी प्राणियोंका सम्बन्ध है, हे रुद्रदेव! हमारे शिष्य, पुत्र, पौत्र, गौ, घोडा, भृत्यवर्गादि प्राणिमात्रकी आयुको नष्ट मत करना॥ हे रुद्र! क्रोधित होकर हमारे लिये परलोकको सहायता करनेवाले, स्त्री, गुरुजन आदि मित्रोंको मत मारना, क्योंकि हम हविके सहित नमस्कारके द्वारा आपका निरंतर ध्यान, स्मरण, आवाहन करते हैं॥

फिर गायत्रीसे शिखा बाँधे॥ फिर निम्न मंत्रोंसे तीन वार आचमन करे॥

ॐभूः पुनातु॥ ॐ भुवः पुनातु॥ ॐस्वः पुनातु॥

फिर निम्न मंत्रसे हृदयपर जलसिंचन करे॥

ॐ त्रिभिष्ट्वमितिमंत्रस्य। पुनन्तु मामिति मंत्रस्य भरद्वाजऋषिः गायत्री अनुष्टुप् छन्दः सविता देवता विश्वेदेवादेवताः हृदिपवित्र-करणे विनियोगः॥ त्रिभिष्टुं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोमधामाभिः॥ अग्ने दक्षैः पुनीहि नः॥ पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया॥ विश्वेदेवाः पुनीत मां जातवेदः पुनीहि मा॥ ऋग् ९।६७।२६-२७॥

हे सविता देव! तुम उदय होकर सब प्राणियोंका अपने २ कर्ममें प्रेरणा करते हो, हे सोम! तुम पवित्र करते हो, हे रुद्रदेव! तुम अति-

वृद्ध सामर्थ्यवाले, अग्नि, वायु, सूर्य रूप तीन पवित्र नेत्रमय शरीरोंसे हमको सर्वत्रसे पवित्र करो ॥ इन्द्रादि देवता मेरेको पवित्र करें, वसु आदि देवता हमको पवित्र करें, तथा अपने कर्मसे रुद्रादि देवता मेरेको पवित्र करें, और हे अग्निनामक रुद्रदेव ! तुम मेरेको पवित्र करो ॥

फिर निम्न मंत्रसे कुशयुक्त जलद्वारा आसनको पवित्र करे–जल छाटे, और भूमीको प्रणाम करे ॥

ॐ इयत्यग्रआसीर्मखस्यतेऽद्य शिरोराध्या सन्देवयजने पृथिव्याः ॥ मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ काण्वशा.३७५॥

हे भूमिदेवी ! तू कल्पसृष्टिके आदिमें प्रादेश (बारह अङ्गुल) मात्र थी–मैं उपासक आज तेरी प्रार्थना करता हूँ, देवयज्ञके विस्तृत स्थानमें यज्ञका मुख्य वेदीरूप शिरसम्पादन करता हूँ और जप आदि यज्ञके लिये तेरेको यज्ञका मुख्यस्थान मानकर तेरेको आसनरूपसे ग्रहण करता हूँ, सो तू मेरे जपको निर्विघ्न समाप्त कर ॥

फिर आसनपर बैठकर संकल्प करे ॥

ॐ तत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्त्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे कलिप्रथमचरणे अमुकामुकेषु मासपक्षतिथिवासरेषु ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्री परमेश्वरप्रीत्यर्थममुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकनामाऽहं प्रातःसंध्योपासनं करिष्ये ॥

प्रणवादिके ऋषि, छन्द, देवता आदिका स्मरण करके प्राणायाम करे ॥

ॐ कारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णः सर्वकर्मारम्भे विनियोगः ॥ ॐ सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः ॥ अनादिष्टप्रायश्चित्ते प्राणा-

यामे विनियोगः ॥ ॐ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता अग्निर्मुखमुपनयने प्राणायामे विनियोगः ॥ ॐ शिरसः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपदा गायत्री छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः यजुश्छन्दः प्राणायामे विनियोगः ॥

निम्न मंत्रोंसे प्राणायाम करे, चरणसे लेकर शिरपर्यन्त मौन होकर आत्मामें सात व्याहृतियोंको स्मरण करता हुआ ब्रह्माका ध्यान करे, फिर गायत्रीके प्रथमपादका उच्चारण करता हुआ, नाभीमें अग्निका ध्यान करे, फिर द्वितीयपादका स्मरण करता हुआ हृदयमें वायुका ध्यान करे, पुनः तृतीय चरणका चिन्तवन करता हुआ भ्रकुटीमें सूर्यका ध्यान करे, फिर आपोज्योति को मनसे स्मरण करता हुआ ब्रह्मरंध्रमें ब्रह्माका प्रथम स्वरूप महेश्वरका ध्यान अभेद रूपसे करे॥ इस ध्यानके अनन्तर तीनों मंत्रोंको स्मरण करता हुआ दहिने नाकके छिद्रको अंगूठेसे रोककर वामाछिद्रसे श्वासको शनैः २ बाहर निकाले, नाभिमें अग्निका ध्यान करे, फिर उसी मंत्रसे धीमे २ श्वासको भीतर खीचे उस समय हृदयमें वायुका ध्यान करे, फिर श्वासको रोककर भ्रकुटीमें सूर्यमण्डलका स्मरण करता हुआ चतुर्थ पुरुष भर्गका ध्यान करे, यही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, प्रजापति है ॥ रेचक पूरक कुम्भकही एक प्राणायाम हुआ, छ प्राणायाम नित्य करे ॥ जिसको वेदोंमें अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति कहा है, उनहींको पुराणोंमे ब्रह्मा, विष्णु रुद्र और चतुर्थ शिव कहा है ॥ मंत्र—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं॥ ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॥ तै. आर १०।२७।१॥

भूमी, अन्तरिक्ष, द्यौ येही तीन लोक हैं॥ मह, जन, तप, सत्यही चार अलोक है॥ सूर्यके प्रकाशसे रहित स्वयंप्रकाशी अलोक है॥

उस सूर्यमध्यवर्ती सविता देवका जो उत्तम ज्योतिःस्वरूप है, हम उसका ध्यान करते हैं, वह देव हमारी बुद्धिको कर्म उपासना ज्ञानमें प्रेरणा करे ॥ व्यापक, अविनाशी, सब चराचरका मूल आधार चेतन-स्वरूप अग्नि, वायु, सूर्य, इन तीनों देवोंका समष्टिस्वरूप ॐ है ॥

फिर निम्नमंत्रको एक वार पढके तीन वार आचमन करे ॥

ॐ सूर्यश्च मेति मंत्रस्य अग्निर्ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ॥ ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना ॥ अहस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चि-द्दुरितं मयि ॥ इदमहममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ तै० आर १०।२५।१ ॥

सूय और यज्ञ तथा यज्ञके भोक्ता इन्द्रादि देवताओ यज्ञमें अज्ञात हुए पापोंसे मेरी रक्षा करों, जो मैंने रात्रिमें मन वाणीसे और दोनों हाथोंसे, पेटसे, पगसे तथा लिंगसे किया होवे, वह पाप रात्रिदेवता वरुण दूर करे, जो कोई मेरेमें दूसरें पाप होवें तो, मैं उन पापोंको मोक्षका स्वरूप हृदयमें स्थित प्रकाशित सूर्यमें आचमन हविको होमताहूँ, वह व्यष्टि आत्मा समष्टिरूपसे ग्रहण करे ॥

फिर निम्नमंत्रोंसे मार्जन करे ॥

आपोहिष्ठेति सूक्तस्य त्रिशिरर्ऋषिः गायत्र्यनुष्टुपूछन्दांसि आपोदेवता मार्जने विनियोगः ॥ ॐ आपोहिष्ठा मयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन ॥ महेरणाय चक्षसे ॥

हे जलअभिमानी देव प्रजापते ! तुम सुखकें आधार हो, अन्न, जल आदिका हमारे लिये संचय करो, तथा हमको उत्तम बुद्धि देओ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः । उशतीरिव मातरः ॥

हे प्रजापते ! जैसे माताएँ बालकोंको दूध पिलाती हैं, तैसेही आप अपना सुखकर रस हमको पिलाओ ॥

तस्मा अरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ ॥ आपो जन यथा च नः ॥

हे जलदेव ! तुम जिस पापको नाश करनेके लिये हमको प्रसन्न करते हैं उसके नाशकी इच्छासे हम आपको शिर आदि अङ्गोपर मार्जन करते हैं, जल हमारी वंश आदिकी वृद्धि करो ॥

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये॥ शंयोरभिस्रवन्तु नः॥

हे दिव्य जल! हमारे यज्ञके लिये सुखसाधन करो, वह पीने योग्य हों, वह जलअभिमानी प्रजापति उत्पन्न हुए रोगोंकी शान्ति, और अप्रगट रोगोंको अलग करे, तथा हमारे मस्तक पर मार्जनसे रक्षा करे ॥

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ॥ अपो याचामि भेषजम्॥

मन इच्छित वस्तुओंके ईश्वर जलदेव है, वही मनुष्योंको स्थान देता है, हम जलदेवसे सुखके लिये प्रार्थना करते हैं ॥

अप्सुमे सोमो अब्रवीदन्त विश्वानि भेषजा ॥ अग्निं च विश्व-शम्भुवम् ॥

सोमदेवताने कहा है के, जलमें सब औषध तथा सब संसारका सुखकर्ता अग्निभी है ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम ॥ ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥

हे जलदेव ! हमारे शरीरकी रक्षा करनेवाली तुम औषधीको पुष्ट करो जिससे हम बहुत कालतक जीवित रहकर सूर्यको देख सके ॥

इदमापः प्रवहत यत्किञ्च दुरितं मयि ॥ यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥

हे जलदेव ! मेरा जो कुछ दुष्कृत है, और जो कुछ मैंने स्वधर्म-

हिंसा किया है, (अर्थात् वैदिक धर्मका त्याग करनाही हिंसा है) अथवा मन वाणीसे सज्जनोंसे मिथ्या भाषण किया और अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णमासी आदि पर्वमें स्वस्त्रीगमन–उपस्थसे पाप किया, सो सब पाप नाश करो ॥

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।।पयस्वानग्न आगहिं मासं सृज वर्चसा ॥ ऋ० १०।९।१–९ ॥

आज मैं जलमें बैठा हुआ स्नान करता हूँ, इसके रसका अग्निने पान किया है, अग्नि ! तुम जलसहित आओ, मेरेको पापरहित करके तेजस्वी बनाओ ॥ फिर जलको नासिकामें लगावे, अघमर्षण सूक्तको यथाशक्ति तीन वार या एकवार श्वासको रोककर पढे, उस समय ध्यान करे; नासिकाके बायें छिद्रसे यह जल सूक्ष्मरूपसे अन्दर गया, और भीतरके सब पाप साथ लेकर नासिकाके दहिने छिद्रसे सब पाप-रूप होकर निकला है इसलिये उस पापरूप जलको न देखकर अपने वाम भागमें भूमीपर बलके साथ फैंक देना ॥

ॐ ऋतं चेति सूक्तस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिः भाववृत्तिः सृष्टिर्देवता अनुष्टुप्छन्दः अघमर्षणे विनियोगः ॥

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ॥ ततोरात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत ॥ अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ॥ दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ऋ० १०।१९०। -२-३॥

जो महाप्रलयसमाधिमें था सोही रुद्र प्रलयके अन्त और विश्वरचनाके कुछ पहिले "मैं एक हूँ बहुत होऊं" इस सत्य संकल्पात्मक प्रकाशसे युक्त हुआ, उस बहुतात्मक सृष्टिविचारसे विशेषस्वरूप ब्रह्मा उत्पन्न

हुआ, उस ब्रह्मके सूक्ष्मदेहसे विराट् हुआ तथा विराट्के अधोभागसे रात्रिरूप भूमी प्रगट हुई, उसके मध्यभागसे अन्तरिक्ष प्रगट हुआ और उसके शिरसे द्यौ उत्पन्न हुआ॥ द्यौसे सबका उत्पत्तिस्थान संवत्सर रूप सूर्य प्रगट हुआ और अन्तरिक्षसे वायु चंद्रमा उत्पन्न हुआ, भूमीसे अग्नि उत्पन्न हुआ॥ फिर सूर्यसे दिन रात्रि उत्पन्न हुए। जो समस्त चराचरको रचकर पालन करता है, सोही प्रलयमे संहाररूपसे वश कर्त्ता है॥ जैसे ब्रह्मा अतीत कल्पोंमें सूर्य चन्द्रमा आदिको रचता है तैसेही वर्त्तमानमें रचता है और भविष्यकल्पोंमेंभी अन्तरिक्ष, भूमीको और सूर्यको रचेगा॥

द्यौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता अन्तरिक्षं पृथिव्यां पृथिव्यप्स्वापः सत्ये सत्यं ब्रह्मणि ब्रह्म तपसि॥ ऐ. ब्रा. ११।६

द्यौ आकाशमें, अन्तरिक्ष भूमीमें, भूमी व्यापक विराट्में, विराट् हिरण्यगर्भमें, ब्रह्मा अव्याकृतमें, अव्यक्त महेश्वरके संकल्पमें स्थित है॥

ब्रह्मतत्सत्यमेतदृतम्॥ मै. शा. १।८।५॥

यह ब्रह्मही ऋत और सत्य है॥

रजता रात्रिः॥ तै. ब्रा. १।५।१०।७॥ अर्णवे सदने॥ मा. शा. १३।५३॥ असौ वै लोकः समुद्रः॥ श. ब्रा. ९।४।२।५॥

भूमीही रात्रि है॥ अर्णवही अन्तरिक्ष स्थान है॥ यह द्युलोकही समुद्र* है॥

फिर आचमन करे, फिर निम्नमंत्रसे तीन अर्घ्य देवे॥

गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री श्रीसूर्यायार्घ्यदाने विनियोगः॥ ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्व०॥ श्रीमित्रस्वरूपिणे सूर्याय इदमर्घ्यं दत्तं नमम॥

* इस सूक्तका विशेष अर्थ देखना होवे तो मेरे रचे हुए "वेदसिद्धान्त-रहस्य" में देखो॥

फिर आचमन प्राणायाम करके फिर गायत्रीसे दिग्बँधन करे ॥ कालव्यतिक्रम होवे तो, चतुर्थ अर्घ्य निम्नमंत्रेस देना ॥

ॐ यदद्यकच्चेति मंत्रस्य सुकक्ष ऋषिः गायत्रीछन्दः सविता देवता चतुर्थार्घ्यदाने विनियोगः ॥ ॐ यदद्यकच्चवृत्रहन्नुदगा अभिसूर्य ॥ सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ऋ. ८।८२।४ ॥

हे सूर्य ! तुम सत्कर्मके विरोधी जलादिके आश्रित अन्धकार अभिमानी पापरूप वृक्षके नाश करनेवाले हो, हे परमैश्वर्यसम्पन्न सविता देव ! आज मैं जो बहुत या अल्प कर्मको करताहूँ, उन कर्मोंके सन्मुख आप प्रगट हुए हो, सबजगत्के कर्म आपके आधीन हैं, तो कालव्यतिक्रम भी आपके वशमें है, वह पाप भी मेरा आप नाश करो ॥

फिर गायत्रीका आवाहन करे ॥

ॐ आयातु इति मंत्रस्य दध्यङ्ङाथर्वऋषिरनुष्टुप्छन्दः गायत्री देवता गायत्र्या आवाहने विनियोगः ॥ ॐ आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसंमितम् ॥ गायत्री छन्दसां माता इदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥ यदह्नात्कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते ॥ यद्रात्रियात्कुरुते पापं तद्रात्रियात्प्रतिमुच्यते ॥ सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वति ॥ तै. आर. १०।३४।१ ॥

सब वर देनेवाली अविनाशी वेदप्रतिपाद्य, वेद रचनेवाली, सात छन्दोंकी माता गायत्री देवी हमारी आवाहनमयी इस प्रार्थनाको स्वीकरके आओ, जो हम द्विजातिमात्र दिनमें पाप करते हैं, वह पाप सायंकालकी संध्यासे नष्ट होता है, तथा जो रात्रिमें पाप करते हैं वह प्रातःकालीय उपासनामयी संध्यासे नष्ट होता है ॥ हे संध्यारूप विद्यासरस्वती महादेवी ! तुम सब चराचरस्वरूप हो ॥

जातवेदसे इति मंत्रस्य कश्यप ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः जात-

वेदा देवता उपस्थाने विनियोगः ॥ ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ॥ सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा-नावेव सिंधुं दुरितात्यग्निः ॥ ऋ. १।९९।१ ॥

हम सर्वज्ञाता अग्निदेव को निमित्त मानकर सोमका रस कूटकर, ऊर्णवस्त्रमय चलनीमें छानकरके तैयार रखते हैं, जो हमारे लिये शत्रुके समान व्यवहार करते हैं उनका सब धन नाश करे, जैसे नौकासे नदी-पार की जाती है, तैसेही सो अग्नि हमको सब दुःखोंसे पार उतारे, और अग्निदेव हमारा समस्त पापसे उद्धार करे॥

ॐ त्र्यम्बकमिति मंत्रस्य वसिष्ठऋषिरनुष्टुप्छन्दः रुद्रो देवता उपस्थाने विनियोगः॥ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्॥ उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ ऋ. ७।५९।१२॥

अव्याकृत, सूत्रात्मा, विराट् इन तीनोंकी अधिष्ठातृदेवी अम्बिका है, सोही त्र्यंबका माता है, इस शक्तिका स्वामी त्र्यम्बक है, और अग्नि (ब्रह्मा), वायु (विष्णु), सूर्य (महेश) इन तीन नेत्र (नेता) महिं-माका पिता (पालक) रुद्र है, तथा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय, अनुग्रह, तिरोधान, ये पाँच सुगंधिरूप कीर्ति विस्तृत हैं, और उपासकों की समस्त कामनाओंकों पूर्ण करनेवाला अणिमा आदि ऐश्वर्यवर्द्धक प्रपितामह त्र्यम्बककी हम यज्ञ, उपासना, ज्ञानकेद्वारा पूजा करते हैं॥ जैसे खर्बूजा फल अपनी उत्पत्तिस्थानसे भिन्न होकर फिर नहीं बेलमें लगता है, तैसेही वह रुद्र हमको जन्ममरणके बन्धनरूप मृत्युसे छुडावे, तथा अपनी सायुज्य मुक्ति देकर अजर अमर करे, पुनरागमनमें न डाले, यही हमारी वारंवार प्रार्थना है॥

अम्बी वै स्त्री भगनाम्नीः॥ तस्मात् त्र्यम्बका॥ कृष्णयजुर्वेदीय मै. शा. १।१०।२०॥ काठकशा. ३६।१४॥

सर्वैश्वर्यसम्पन्न नामवाली अम्बीही स्त्री है ॥ इस लियेही त्री अम्बी मिलकर त्र्यंबका है ॥ साकारका लोप होकर, त्री अम्बकारूप बन गया, के त्र्यम्बका हुआ ॥ जो त्रीअम्बिकाका स्वामी होवे सोही त्र्यम्बक है ॥

एष ते रुद्र भागः सहस्वस्राम्बिकया तञ्जुषस्व स्वाहैषते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ काण्वशा. ३।५७॥

रुत् चेतन वाचक है, र–रमणीय ज्ञानवाचक है, यही समाधिरूप अभेद अवस्था है, और प्रलयरूप समाधिकी उत्थानदशाही अर्धनारीश्वर है ॥ सृष्टिस्थितिके भेदको लेकर, रुद्र और अम्बिका है, यह अम्बिका अपनी अवस्थासे तीनरूपमें विकास होती है, इस लियेही रुद्रकी स्वसा बहिन है, और चेतन रुद्रसे अपृथक् होनेसे अर्धाङ्गना है ॥ इस अम्बिका भगका तीन मात्रारूप भाग आखु (चोर) पशु, प्रणवरूप गणपति है, नित्यज्ञानस्वरूप उमामहेश्वर प्रणवकोशसे ढका है । हे रुद्र ! आपकी प्राप्ति करनेवाला भागात्मक ॐ गणेश है ॥ हम ओङ्कार-युक्त स्वाहाकार आहुति देते हैं, हे रुद्र ! तुम अम्बिका बहिन (अर्धाङ्गना) के साथ सेवन करो, क्योंकी आप वाच्यका यह ॐ गणेशवाचक पुत्र है, इसने सब ब्रह्मांडके आकारको धारण करके आपके यशका नगाडा बजाया है, जो पिताके बहुत स्वरूपसे फैलाता है, सोही पुत्र है ॥ नित्य ज्ञानस्वरूप रुद्र उमा मातापिताका पुत्र ओंकार (गणपति) है ॥

त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धनः ॥ ऋ. १।३१।५ ॥ शम्भुः पुष्टिः ॥ ऋ. १।६५।१ ॥ रुद्रो वा अग्निः ॥ कपि. शा. ४०।५ ॥ पुष्टि-वर्धनः स नः सिषक्तु यः शिवः ॥ मै. शा. १।५।४ ॥

हे व्यापक रुद्र ! तुम पुष्टिवर्द्धक हो, और धर्म, अर्थ, काम,

---

१ इस मन्त्रका विशेष अर्थ "वेदसिद्धान्तरहस्य" में है ॥

मोक्षकी वर्षा करनेवाले हो ॥ सर्वैश्वर्यवर्द्धक शम्भु है ॥ रुद्रका नाम अग्नि है ॥ जो सर्वैश्वर्यसम्पन्न है सोही शान्तस्वरूप रुद्र हमारे लिये दीर्घायु आदि सुखका सिञ्चन करे ॥

फिर नमस्कार और गायत्रीका विसर्जन करे ॥

सन्ध्यायै नमः ॥ गायत्र्यै नमः ॥ सावित्र्यै नमः ॥ सरस्वत्यै नमः ॥ सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमः ॥ यां सदा सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ सायंप्रातर्नमस्यन्ति सा मा संध्याऽभिरक्षतु ॥ उत्तमे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतमूर्धनि ॥ ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥ तै. आर. १०।३०।१॥

विराट् भूमीके मध्यमें द्यौपर्वत है, उस द्युलोकके मस्तक उत्तम शिखररूप सूर्यमें चेतनज्योतिःस्वरूप प्रगट होनेवाली गायत्री देवता है। हे देवी ! तुम द्विजातियोंकी प्रार्थनासे आवाहनकी गई हो और उन जापकोंकी मनोरथको पूर्ण कर जिस सुखमय स्थानसे आई हो ऊसी मण्डलमें गमन करो ॥

अनेन प्रातःसंध्यावन्दनेन कर्मणा श्रीसविता प्रीयताम् ॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

॥ इति प्रातःसंध्या समाप्ता. ॥

अथ मध्याह्नसंध्या।

प्रातःसंध्याके समान आचमन प्राणायाम करे ॥ नीचेका संकल्प करे।

अद्य ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीसवितृप्रीत्यर्थं मध्याह्नसंध्यामुपासिष्ये ॥

प्रातःसंध्याके समान करे ॥ फिर आचमन करे ॥

आपः पुनन्त्वित्यस्यानुवाकस्य सूर्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः वायुरूपिजलदेवता आचमने विनियोगः॥ ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् ॥ पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् ॥ यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम ॥ सर्वं पुनन्तु मामापो सतां च प्रतिग्रहꣳस्वाहा ॥ तै. आर. १०।२३।१-२ ॥

जो जलदेव है वह जलसिंचनसे भूमीको पवित्र करे, सो भूमी पवित्र हुई मेरेको पवित्र करे, और वेदोपदेशक गुरुको वह जल पवित्र करे, उस गुरुने उपदेश किया हुआ वेदमंत्र स्वयं पवित्र है, वह मंत्रदेव मेरेको पवित्र करे, ब्रह्मकर्मरहित द्विजातिमात्र ब्रह्मबन्धु आदि पतितका अन्न खाया होवे तथा मेरेसे अन्य पाप हुआ होवे, उस सब पापको नाश कर मेरेको फिर पवित्र करे, और गायत्रीसंध्यात्यागी ब्रह्मबन्धु तथा शूद्रका दान मैंने लिया होवे तो उस प्रतिग्रहसे शुद्ध करे। इस मंत्रसे अभिमंत्रित किया जल मेरे मुखरूप अग्निमें आचमनमय आहुति देताहूँ इस आहुतिसे मेरे सब पाप नाश होवें । जैसे कोई शत्रु मर्मभेदी वचन कहता है, वह शल्यरूपी बाण मरणपर्यंत भेदता है, तैसेही श्रद्धायुक्त मंत्र भी पाप नाश करता है ॥

फिर प्रातःसंध्याके समान करे, फिर निम्नमंत्रसे अर्घ्य देवे ॥

हंसः शुचिषदित्यस्य गौतमवामदेव ऋषिः जगती छन्दः सूर्यो देवता अर्घ्यदाने विनियोगः ॥ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॥ नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं ॥ ऋ. [illegible]॥ ब्रह्मरूपिणे सवित्रे इदमर्घ्यं दत्तं न मम ॥

जो पवित्र ब्रह्म वसुरूपसे अन्तरिक्षमें स्थित और होता रूपसे सूर्य-मण्डलमें स्थित हुआ हंस है, प्रत्येक [illegible] स्थित [illegible] है,

मनुष्योंमें ज्ञानरूपसे स्थित है, प्रत्येक प्राणियोंके हृदयाकाशमें सत्य चेतनरूपसे स्थित है, जलमें शंख मुक्ता आदिरूपसे स्थित है, गौओंमें दूधरूपसे स्थित है, पर्वतमेघमें सोमलता और विद्युत्‌रूपसे स्थित है, सोही चेतन सबका मूलकारण है ॥

फिर दो आचमन करे ॥ फिर सूर्यके सन्मुख ऊँचे हाथ उठाकर उपस्थान करे ॥

ॐ उद्वयं तमसरितिसूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दांसि सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः॥ ॐ उद्वयं तमसस्परिज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ॥ देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ उद्यन्नद्य मित्र-महआरोहन्नुत्तरां दिवम् ॥ हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाका सुदध्मसि॥ अथो हारिद्रवेषु मे हरि-माणं निदध्मसि ॥ उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ॥ द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषतेरधम् ॥ ऋग्.१।५०।१०–१३॥

अन्धकारके ऊपर प्रकाशित हुई ज्योतिको देखकर सब देवोंमें प्रकाशशाली सूर्यके समीप हम जाते हैं, सूर्यही उत्तम ज्योति है ॥ अद्भुत प्रकाशरूप सूर्य, आज उदय होकर, तथा ऊँचे आकाशमें चढाकर मेरे हृदय–मानसी पीडा आदि अनेक रोगोंका नाश करो ॥ मैं अपने हृदयरोगको शुक आदि पक्षियोंमें त्याग करता हूँ, और मेरे यजमानोंके रोगोंको भी शुक, मैना आदि पक्षियोंमें मंत्रके बलसे स्थापन करता हूँ ॥ यह सूर्य मेरे नाशकारी रोगोंको नष्ट करनेके लिये समस्त तेजके साथ उदय हुआ है, मैं उस रोगका नाश करताहूँ ॥

इन मंत्रोंसे नित्य सूर्यको बारह नमस्कार करे ॥ फिर बैठकर आचमन प्राणायाम करके जप करे, सब कार्य प्रातःकालके समान करे ॥ २ ॥

॥ इति मध्याह्नसंध्या समाप्ता. ॥

अथ सायंसंध्या ।

फिर सायंकालकी संध्या प्रातःकालके समानकरे ॥

ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा सवितृप्रीत्यर्थं सायंसंध्योपास्तिं करिष्ये ॥

फिर निम्नमंत्रसे आचमन करे ॥ फिर संकल्प करे ।

ॐ अग्निश्चमेतिमंत्रस्य आदित्यऋषिः प्रकृतिश्छन्दः अग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ॥ ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम् यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पन्तु॥ यत्किञ्चिद् दुरितं मयि इदमहममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ तै. आर. १०।२४।१ ॥

फिर आपोहिष्ठा इस नौ मंत्रवाले सूक्तसे मार्जन करे ॥ फिर गायत्री मंत्रसे तीन अर्घ्य (ब्रह्मस्वरूपिणे वरुणाय इदमर्घ्यं दत्तं नमम) देवे ॥ फिर निम्नमंत्रसे आचमन करे ॥ असावादित्यो ब्रह्म ॥ फिर प्राणायाम करके दिग्बन्धन और गायत्री जपकरे ॥ फिर वरुणका उपस्थान करे ॥

यच्चिद्धिते इति दशर्चामाजीगर्तिः शुनःशेपः सकृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः वरुणो देवता गायत्री छन्दः वरुणोपस्थाने वि. ॥ ॐ यच्चिद्धिते विशो यथा प्रदेव वरुणव्रतम् ॥ मिनीमसि द्यविद्यवि ॥

जैसे जगत्की प्रजा वरुणकी उपासनामें शंसय करती है, तैसेही हम भी प्रतिदिन आलस्य करते हैं ॥

मानो वधाय हन्तवे जिहीळानस्यरीरधः॥ माहृणानस्य मन्यवे॥

हे वरुणदेव ! तुम हमारा घातक और अनादर करके नाश नहीं करना, और कोपमें भरकर, हमपर क्रोध नहीं करना ॥

विमृळीकायते मनोरथीरश्वंनसं दितम् ॥ गीर्भिर्वरुण सीमहि॥

हे वरुण, जैसे रथका स्वामी अपने थके हुए घोड़ोंको शान्त करता है, तैसेही सुखके लिये स्तुतिद्वारा, हम उपासक आपके मनको प्रसन्न करते हैं ॥

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये ॥ वयो न वसतीरुप ॥

जैसे पक्षी अपने घोसलोंकी तर्फ दौड़ते हैं, तैसेही हमारी क्रोधरहित चिन्ताएँ भी धनप्राप्तिके लिये दौड़ रहीं हैं ॥

कदाक्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे ॥ मृळीकायोरुचक्षसम् ॥

वरुण देव बलवान्, सबके नेता तथा असंख्य प्राणियोंका साक्षी है" सुखके लिये हम उस वरुणको यज्ञमें कब आवाहन करेंगे ॥

तदित्समानमाशाते वेनं तानप्रयुच्छतः ॥ धृतव्रताय दाशुषे ॥

यज्ञ करनेवाले हव्यदाताके लिये प्रसन्न होकर, दिन अभिमानी मित्र तथा रात्रि अभिमानी वरुण यह साधारण हव्य ग्रहण करते हैं, और त्याग नहीं करते ॥

वेदायोवीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ॥ वेदनावः समुद्रियः ॥

जो वरुण, आकाशचारी पक्षियोंका मार्ग तथा समुद्रकी नौकाओंका मार्ग जानता है ॥

वेदमासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ॥ वेदाय उपजायते ॥

जो वरुण संवत्सरचक्रका अवलम्बन करक अपने २ फलोत्पादक बारह महीनोंको प्रत्येक मासके अभिमानी रूपसे जानता है, और तीन वर्षमें उत्पन्न होनेवाले तेरहवें अधिक महीनेको भी जानता है ॥

वेदवातस्य वर्त्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः ॥ वेदा ये अध्यासते ॥

जो वरुण विस्तृत, उत्तम तथा महान् वायुका भी मार्ग जानता है, और ऊपर आकाशमें निवास करता है, उन देवोंको भी जानता है ॥

निषसादधृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ॥ साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ ऋग्. १।२५।१–१०॥

जगत्की उत्पत्ति पालनादि कर्मधारी, उत्तम कर्मकर्त्ता वरुण दैवी सन्तानोंके मध्यमें सर्व सिद्धियोंके फल देनेके लिये दक्षिणायन उत्तरायन रूपसे आकर स्थित हुआ था ॥

फिर प्रातःकालके समान समाप्त करना ॥

इति श्रीगुर्जरदेशान्तर्गतराजपीपलासंस्थाननिवासि-
स्वामिश्रीशंकरानन्दगिरिकृतभाषाटीकासमेता
ऋग्वेदीयसंध्या समाप्ता ॥ १ ॥

॥ अथ यजुर्वेदीयत्रिकालसंध्याप्रारम्भः ॥

जे मंत्र ऋग्वेदीय संध्यामें आये हैं, उन मंत्रोंका अर्थरहित प्रथम पाद मात्र इस संध्यामें लिखा जायगा, और मंत्रोंके अर्थ भी होयँगे ॥

अग्निरिति भस्म० १ ॥

इस मंत्रसे भस्म मर्दन करे ॥

त्र्यम्बकं य० २ ॥ प्रसह्य भ० ३ ॥

इन दोनों मंत्रोंसे भस्मको देखे ॥

त्र्यायुषं ज० ४ ॥

इस मंत्रसे भस्मका त्रिपुण्ड्र करे ॥

मानस्तोके त० ५ ॥

इससे रुद्राक्षमाला धारण करे ॥

साक्षः शिखी त्रिदण्डी ॥ महाभारत १२।३८।३३ ॥ अक्षमालिने ॥ महाभारत शान्तिपर्व १२। अ. २८४। श्लो. १००॥ द्रोणपर्व ७।२०१।६९ ॥

शिवभगवान् रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं ॥

कलापका वक्षमाला यथैव ॥ म. भा. वनपर्व २।११२।५ ॥

शृंगी ऋषि रुद्राक्षकी माला जपता था ॥

मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रे०॥ श्रीमद्भागवत ११।१७।२३॥

ब्रह्मचारीने मेखला मृगचर्म, दण्ड, रुद्राक्ष, जनेऊ धारण करना ॥

अक्षमालाम् ॥ श्रीमद्भा० ८।१८।१६ ॥

सरस्वतिने वामनको रुद्राक्षमाला दिया ॥

अक्षमालाडमरुक ॥ श्रीमद्भा० १२।१०।१२ ॥

शिव रुद्राक्षमाला और डमरुक धारण करते हैं ॥

फिर गायत्रीसे शिखा बाँधे ॥

ॐ भूः ऋग्वेदाय स्वाहा। ॐ भुवः यजुर्वेदाय स्वाहा। ॐ स्वः सामवेदाय स्वाहा ॥

इनसे तीन आचमन करे ॥

त्रिभिष्ट्वं देवं० ७॥ पुनन्तु मा देव० ॥ ८॥

इन दोनों मंत्रोंसे हृदयपर जलसिंचन करे ॥

ॐ तत्सदद्य ब्रह्मणो द्विती० ९ ॥

इस संकल्पको बोले ॥

इयत्यग्र आ० १० ॥

इस मंत्रसे आसनको पवित्र करे ॥

फिर गायत्रीमंत्रसे जल लेकर अपनी सर्वत्रसे रक्षा करे ॥

फिर सप्तव्याहृतियोंके सहित गायत्रीमंत्रसे प्राणायाम करे ॥

सूर्यश्च० १२॥

एकवार बोलके तीनवार आचमन प्रातःकालकी संध्यामें करे ॥

आपः पुनन्तु० १३ ॥

इससे मध्याह्नमें आचमन करे ॥

अग्निश्च मा० १४ ॥

इससे सायंकालकी संध्यामें आचमन करे ॥

आपोहिष्ठा० ॥ योवः शिवतमो० ॥ तस्माऽअर० १५ ॥

इन तीन मंत्रोंसे मार्जन करे फिर निम्नमंत्रसे तीन वार जल शिरमें लगावे॥

द्रुपदादिवेति मंत्रस्य कोकिलो राजपुत्र ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवता (सौत्रामण्यवभृथे) अघमर्षणे विनियोगः ॥ ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ॥ पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः १६ ॥ मा. शा. २०।२०॥

हे जलदेव ! मेरेको पापसे शुद्ध करो, जैसे खडाऊँओंसे रज सहजमें हीं अलग होती है, और पसीनायुक्त मनुष्य स्नान करनेसे मलसे छूट जाता है, तथा घृत मैलरहित शुद्ध होता है, तैसेही जलदेव, मेरेको सब पापसे मुक्त कर पवित्र करे ॥

फिर अघमर्षण सूक्तसे पाप पुरुषका नाश करे ॥

ऋतं च सत्यं चाभी० ॥ १७ ॥

यह सूक्तही अघमर्षण है ॥ फिर निम्नमंत्रसे तीन आचमन करे ॥

ॐ अन्तश्चरसीति मंत्रस्य तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ॥ ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ॥ त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् १८ ॥ तै. आर. १०।३१।१ ॥

सूर्यही समुद्र है और उसकी किरणसमूह 'आप' नामवाली हैं॥ ॐ रूप सूर्यरूप पुरुषही देव आदि प्राणियोंकी बुद्धिगुहामें जीवरूपसे स्थित है! हे रुद्र! तुमही सर्वत्र व्यापक यज्ञ हो, तुमही वषट्कार हो, तुमही चराचरस्वरूप हो, तुमही सबके कारण आधार चेतनघन मोक्षस्वरूप व्यापक हो ॥

फिर गायत्रीसे तीन अर्घ्य देते समय बोले ॥

ब्रह्मस्वरूपिणे सवित्रे इदमर्घ्यं दत्तं न मम ॥

प्रातः और सायंकालमें गायत्रीमंत्रसे अर्घ्य देना, और मध्याह्नमें हंसः शुचिषद् मंत्रसे देना ॥ कालव्यतिक्रम होवे तो, चौथा अर्घ्य आकृष्णेन० मंत्रसे देना ॥ अथवा निम्नमंत्रसे अर्घ्य देना ॥

ॐ यदद्य कच्चेतिमंत्रस्य सुकक्ष ऋषिः गायत्री छन्दः सविता देवता चतुर्थार्घ्यप्रदाने विनियोगः ॥ ॐ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभिसूर्य ॥ सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १९ ॥ ऋ. ८।९३।४ ॥

हे सत्कर्मके प्रतिबन्धक, जलादिके आश्रित, राक्षससंहारकारी, अन्धकार अभिमानी, वृत्रपापके नाशक परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्य! आज मैं जो बहुत या अल्पकर्मको करता हूँ उन कर्मोंके सन्मुख आप प्रकट हुए हो, सब जगत्के कर्म आपके आधीन हैं, तो कालव्यतिक्रमभी आपके वशमें है, वह पापभी आप नाश करो ॥

मध्याह्नमें ऊपरको हाथोंको उठाकर और प्रातः सायंकाल अञ्जुली बाँध दोनों हाथ पसारके सूर्यके सन्मुख देखता हुआ आगे निम्नमंत्रोंसे उपस्थान करे॥

उद्वयन्त० २० ॥

यह मंत्र ऋग्संध्यामें है ॥

उदुत्यमिति मंत्रस्य प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः सूर्यो देवता चित्रं देवानामित्यस्य कुत्साङ्गिरस ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ॥ ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ॥ दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २१ ॥ ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ॥ आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ऋग् १।५०।१०॥१।११५।१॥ ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ मा. शा. ३६।२४॥

अन्धकारके ऊपर प्रकाशित हुई ज्योतिको देखकर हम सब देवोंमें प्रकाशवाले सूर्यके पास जाते हैं ॥ सूर्यही उत्तम ज्योति है ॥ सब प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मको जाननेवाले सूर्यदेवको जगत्के प्रकाशके लिये, सात किरणरूप घोडे वहन करते हैं ॥ उदयरूपसे किरणात्मक देवोंका विचित्र तेजसमूह, दिनको मित्रका साथ है, और रात्रिको वरुणका प्रकाश है, तथा सूर्य सायंकालके समय अग्निमें प्रवेश करता है, सब मनुष्य अग्निसे देखते हैं, उदय हुए सूर्यने, द्यौ, भूमी, अन्तरिक्षको अपनी रश्मियोंसे परिपूर्ण किया है, यह सूर्य चराचर जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय कर्त्ता आत्मा है, अर्थात् तीन भागसे सूर्यमण्डल है, और एक भागमें समस्त स्थावर, जङ्गम है ॥ समष्टि सूर्य और व्यष्टि जगत् है ॥ वह मण्डल किरणोंसे युक्त निर्मल समष्टि नेत्ररूप तेज पूर्व दिशामें उदय होता है, उस मण्डलका अभिमानी भर्गकी कृपासे हम सैकडों वर्ष

नेत्ररोग रहित देखें, अनेकों वर्ष स्वाधीन होकर जीयें, बहुत वर्षपर्यंत कर्णबधिरतारहित होकर सुने, तथा चिरकालतक जिह्वाकी मूकता- रहित वाणी बोले, बहुत वर्षोंतक दीनतारहित स्वतंत्र होवे ॥

फिरमुखादि अङ्गोका स्पर्श करे ॥

अङ्गुलियोंसे ॥

ॐ वाङ् मे आस्येऽस्तु ॥

तर्जनी तथा अंगुठासे ॥

ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥

अनामिका तथा अंगूठासे ॥

ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥

मध्यमासे ॥

ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु २ ॥

अङ्गुलियोंसे ॥

ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु २ ॥

हाथोंसे ॥

ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥ २ ॥

शिरसे पगतक सब अङ्गोंका ॥

ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

फिर गायत्रीका आवाहन करे ॥

ॐ तेजोसीति मंत्रस्य विमल ऋषिः रुद्रो देवता अनुष्टुप्छन्दः गायत्र्या आवाहने विनियोगः ॥ ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्य मृतमसि धामनामासि ॥ प्रियं [illegible] देवयजनमसि ॥मा.शा.१।३१॥

हे रुद्ररूप गायत्री ! तुम तेज हो, वीर्य हो, प्राण हो, सबके आधार हो, जप करनेवाले ब्राह्मणोंके शत्रुनाशक तुम हो, तुम देवताओंके प्रिय हवि देनेवाले अग्निहोत्ररूप हो, तुम सबके पूज्य हो, मनसे मैं आपका आवाहन करता हूँ ॥

फिर गायत्रीका उपस्थान करे ॥

ॐ गायत्रीतिमंत्रस्य विमल ऋषिः तुरीयस्वरूपरुद्रदेवता गायत्री छन्दः गायत्र्युपस्थाने विनियोगः ॥ ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यसि॥ नहि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसे सावदोम् ॥ बृ. उ. ५।१४।७ ॥

हे स्तुति करने योग्य ! तुम अग्नि नामसे एकस्वरूप हो, वायु नामसे दो स्वरूप हो, सूर्यमण्डल नामसे तीन स्वरूप हो, और सूर्यस्थित चेतन तुरीय स्वरूप हो, तथा सूर्थ उपाधिरहित होनेसे तुम चतुर्थ पुरुष भी नही हो, क्योंकि निरुपाधिक चेतनकी सत्तामें सब उपाधि कल्पित हैं ॥ विशेष सूर्यमण्डल देहधारी भर्गरूपी रूद्र हो, आप तुरीयस्वरूप रुद्रको मेरा वारंवार नमस्कार है ॥ आप सब पापरहित ओंकार स्वरूपहो, मेरा अज्ञानादि पापोंका नाश करो ॥

फिर गायत्रीका जपकरे ॥

ॐ गायत्रीतिमंत्रस्य विश्वामित्र ऋषिः गायत्री छंदः सविता देवता जपे विनियोगः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

फिर पूर्वादि सब दिशाओंमें फिरता हुआ सूर्यकी प्रदक्षिणा करे ॥ फिर निम्नमंत्रसे गायत्री विसर्जन करे ॥

उत्तमे शिखरे जा० ॥

फिर गायत्र्यादि देवताओंको प्रणाम करे-फिर गायत्रीजप देवको अर्पण करे ॥

इति श्रीगुर्जरप्रदेशान्तर्गतराजपीपलासंस्थाननिवासि-
स्वामिश्रीशंकरानन्दगिरिकृतभाषाटीकासमेता
यजुर्वेदीयत्रिकालसंध्या समाप्ता ॥ २ ॥

॥ अथ सामवेदीयत्रिकालसंध्याप्रारम्भः ॥

अथ प्रातःसंध्या ॥

ऋग्वेदीय संध्याके समान भस्म रुद्राक्षधारण करे, फिर हाथोंमें कुश धारण करके गायत्रीमंत्रसे शिखा बाँधे, फिर निम्न मंत्रोंसे आचमन करे ॥

ॐ भूः आत्मतत्त्वाय स्वाहा। ॐ भुवः विद्यातत्त्वाय स्वाहा। ॐ स्वः शिवतत्त्वाय स्वाहा ॥

फिर संकल्प करे ॥

ॐ तत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीये० ॥

गायत्रीसे सर्वत्र जल फेरे, अपनी रक्षा करे ॥

फिर निम्नमंत्रसे हृदयपर जलसिंचन करे ॥

ॐ त्रिभिष्टुं देव० ॥ पुनन्तु मां० ॥

फिर निम्नमंत्रसे कुशयुक्त जलद्वारा आसनको पवित्र करे, और भूमीको नमस्कार करे ॥

ॐ इयत्यग्र० ॥

फिर आपोहिष्ठा आदि तीन ऋचाओंके सहित गायत्रीमंत्रसे शिरमें कुशजल छाटे ॥ फिर ऋषिछन्ददेवतासहित सप्तव्याहृति, गायत्री, शिरमंत्रसे प्राणायाम करे ॥ फिर निम्नमंत्रको एकवार बोलके तीन आचमन करे ॥

ॐ सूर्यश्च मा० ॥

फिर—ऋतं च सत्यं चाभी०

सूक्तसे अघमर्षण करे ॥ कालव्यतिक्रम होनेसे पहिले एक अर्घ्य गायत्रीसे देना, फिर तीन अर्घ्य गायत्रीसे देना ॥ फिर सूर्यकी प्रदक्षिणा करना ॥ फिर प्रातःसायंकालमें अञ्जलीयुक्त दोनों हात पसारके और मध्याह्नमें ऊपरको दोनों भूजा ऊँची करके निम्नमंत्रोंसे उपस्थान करना ॥

ॐ उदुत्यं जात० ॥ चित्रं देवानामु० ॥

सूर्यका उपस्थान करे ये दोनों मंत्र यजुः संध्यामें हैं ॥

फिर निम्नमंत्रसे गायत्रीका आवाहन करे ॥

ॐ आयातु वरदा देवी० ॥

फिर गायत्रीजप करे ॥ फिर जप अर्पण करे ॥ फिर गायत्रीका निम्न-मंत्रसे विसर्जनकरे ॥

उत्तमे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतमूर्धनि ॥

अनेन प्रातःसंध्याख्येन कर्मणा मित्रस्वरूपी सविता प्रीयतां न मम ॥ इति प्रातःसंध्या ॥

अथ मध्याह्न—सायंसंध्या ॥

प्रातःसंध्याके समान भस्म माला धारण करके फिर संकल्प करे ॥

ॐ तत्सदद्य मध्याह्नसंध्योपासनमहं करिष्ये ॥

फिर प्रातःवत् कार्यकरे॥ फिर निम्नमंत्रको एकवार बोलके तीन आचमन करे॥

आपः पुनंतु पृ० ॥

फिर सब काम प्रातःकालकी संध्याके समान समाप्त करे॥

सायंकालकी संध्या भी प्रातःकालकी संध्याके समान है किन्तु विशेष निम्नमंत्रसे तीन आचमन करना ॥

अग्निश्च मा मन्युश्च ॥

और सब विधि प्रातःवत् है ॥

इति गुर्जरप्रदेशान्तर्गतश्रीराजपीपलासंस्थाननिवासि-
स्वामिश्रीशंकरानन्दगिरिकृतभाषाटीकासमेता
सामवेदीयत्रिकालसंध्या समाप्ता ॥ ३ ॥

॥ अथ अथर्ववेदीयत्रिकालसंध्या ॥

सब मंत्र ऋक्संध्यामें देखना । निम्न मंत्रसे भस्म सम्पुट करना ॥

ॐ अग्निरिति० ॥

फिर निम्नमंत्रसे अभिमंत्रित करना ॥

ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॥

फिर निम्न मंत्रसे भस्म मर्दन करके ललाटादि अङ्गोंमें लगावे, फिर गायत्रीसे शिखा बाँधे, फिर निम्न दोनों मंत्रोंसे हृदय पवित्र करे ॥

ॐ त्रिभिष्ट्वं देव० ॥ पुनन्तु मां देव० ॥

फिर निम्नमंत्रसे आसन पवित्र करके भूमीको नमस्कार करे ॥

ॐ इयत्यग्न आ० ॥

फिर आसनपर बैठ स्वस्ति आदि आसन लगावे ॥ फिर निम्न मंत्रोंसे तीन आचमन और चौथेसे हाथ धोना ॥

ॐ अमृतमस्यादिमंत्राणाम् अथर्वा ऋषिरनुष्टुप्गायत्रीछन्दांसि सोमो देवता आचमने वि० ॥ ॐ अमृतमस्यमृतोपरस्तरणमस्यमृतायत्वोपस्तृणामिश १ ॥ ॐ जीवास्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासं २॥ ॐ उपजीवास्थोपजीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासं ३ ॥ ॐ संजीवास्थ संजीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासं ४ ॥ अथर्व १९।६९।१-२-३ ॥

हे इंद्रादि देवो ! तुम अमर हो, और मैं उपासकभी आपकी कृपासे जीता रहूँ, तीनों अवस्थायुक्त पूण आयुसे मैं जीवित रहूँ ॥ हे अग्नि वायु सूर्य देवताओ ! तुम सब अपने २ आलस्यरहित कर्तव्य आधारसे जीवित हो, तथा मैं भी आप देवोंके आश्रयसे जीता रहूँ, सम्पण आयुरूप जीवनसे मैं जीता रहूँ॥

फिर निम्न मंत्रसे मुख आदि अङ्गस्पर्श करे ॥

ॐ जीवलास्थेति मंत्रस्य अथवा प्रजापतिर्ऋषिः उष्णिक् छन्दः सोमो देवता सर्वाङ्गस्पर्शने वि० ॥ ॐ जीवलास्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासं ॥ अथर्व १९।६९।४॥

हे इन्द्रादि देवताओ ! तुम जीवन देनेवाले हो, तुम सबकी अनुग्रहसे म जीता रहूँ और समस्त कुटुम्बके सहित पूण आयुपर्यन्त मैं जीता रहूँ ॥ फिर निम्न तीनों मंत्रोंसे प्राणायाम करे ॥

ॐकारस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णः सर्वकर्मारम्भे वि० ॥ ॐ सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरु-

णेन्द्रविश्वेदेवादेवताः (अनादिष्टप्रायश्चित्ते) प्राणायामे वि० ॥ ॐ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता । ॐ शिरसः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपदा गायत्री छन्दो ब्रह्मवह्निवायुसूर्यदेवताः यजुश्छन्दः प्राणायामे वि० ॥ ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ जनत् ॐ वृधत् ॐ करत् ॐ रुहत् ॐ महत ॐ तत् ॐ शम् ॐ तत्सवितुर्व० ॐ आपोज्योती० ॥

फिर निम्नमंत्रोंसे अघमर्षण करे ॥

ॐ द्रुपदादिवेति मंत्रस्य अथर्वा ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सोमो देवता ॐ अव्यसश्चेति मंत्रस्य अथर्वा ऋषिः रुद्रो देवता अघमर्षणे वि० ॥ ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः० ॥ ॐ अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया ॥ ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ अथर्व० १९।६८।१॥

समष्टि देवका ब्रह्माण्ड है, और व्यष्टि जीवका पिण्ड है, उन दोनोंका उपलब्धिस्थान हृदयको तीनों अग्निओंकी उपासनासे शुद्ध करके में मायासे रहित करता हूँ, अर्थात् समष्टि व्यष्टि चेतन उपाधिरहित तुरीय स्वरूप मैं रुद्र हूँ, और परमाथ स्वरूपको जानने पर भी मैं व्यवहारमें कर्मोंको करता हूँ ॥

फिर निम्न तीन मंत्रोंसे मार्जन करे ॥

आपोहिष्ठा० ॥ योवः शिव० ॥ तस्मा अर० ॥

फिर निम्न मंत्रसे तीन अर्घ्य देना ॥

ॐ हरिः सुपर्णो दिवमिति मंत्रस्य अथर्वा ऋषिः जगती छन्दः सविता देवता मित्रायार्घ्यदाने विनियोगः ॥ ॐ हरिः सुपर्णो

दिवमारुहोर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ॥ अवताञ्जहि हरसा जातवेदो विभ्यदुग्रोर्चिषा दिवमारोह सूर्य ॥ अथ० १९। ६५।१ ॥ मित्राय इदमर्घ्यं दत्तं न मम ॥

हे सूर्य ! तू प्रकाशसे अन्धकाररूप पापका नाशक है, तू व्यापक किरणसमूह पक्षी है सो तू ऊपर स्वर्गमें चढ़ा है, जे मन्देहादि राक्षस अन्तरिक्षमें चढकर आनेवाले आपका तिरस्कार करते हैं, हे सबके अन्तर्यामी सूर्य ! तू उन राक्षसोंको अपने तेजसे भस्म कर, उस राक्षस समूहसे भय न करता हुआ तू रुद्र है, हे सूर्य ! अपने प्रकाशसे उदय होकर मध्याह्नके समय आकाशमें चढ़ जा ॥

फिर कालव्यतिक्रम होनेपर चतुर्थ अर्घ्य गायत्रीसे देना ॥ फिर निम्नमंत्रसे आसनकी प्रदक्षिणा करना ॥

ॐ असावादित्यो ब्रह्म ॥

फिर आचमन करना, फिर एक प्राणायाम करना, फिर निम्नमंत्रोंसे उपस्थान करना ॥

ॐ अभयं नरिति मंत्रस्य विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। अभयं मित्रादिति मंत्रस्य त्रिष्टुप् छन्दः अथर्वा ऋषिः इन्द्रो देवता सूर्योपस्थाने वि० ॥ ॐ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ॥ अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ॐ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ॥ अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ अथर्व १९।१५।५-६ ॥

अन्तरिक्ष हमारी रक्षा करे तथा ये दोनों द्यावाभूमी हमारी पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तरसे रक्षा करें, और हमारे पुत्र शिष्य आदिके लिये अभय रूप हो ॥ शत्रु तथा मित्रसे अभय हो, ज्ञात और अज्ञातसे अभय हो

और जो कुछ भी दिन रात्रिके पदार्थ सन्मुख है उससे भी हमारा कल्याण हो तथा सब दिशाएँ मेरे लिये सुखरूप होवें ॥

फिर गायत्रीजप करे, फिर सब देवताओंको नमस्कार करके पीछेसे संकल्प करे ॥

अनेन प्रातःसंध्याख्येन कर्मणा भगवान् मित्रस्वरूपी सविता प्रीयतां न मम ॥ इति प्रातःसंध्या ॥

अथ मध्याह्नसंध्या ॥

प्रातःसंध्याके समान करना, विशेष मध्याह्नमें अर्घ्यदान निम्नमंत्रसे देना ॥

ॐ उदुत्यं जात० ॥ ॐ चित्रं देवानामु० ॥ ॐ सवित्रे इदमर्घ्यं दत्तं न मम ॥

फिर निम्नमंत्रसे उपस्थान करे ॥

ॐ उद्वयं तमसस्प० ॥

शेषकर्म प्रातःसंध्याके समान है ॥

इति मध्याह्नसंध्या ॥

अथ सायंसंध्या ॥

प्रातःकालके समान करना, विशेष निम्नमंत्रसे अर्घ्य देना ॥

अयोजालाइति मंत्रस्य अथर्वा ऋषिः जगती छन्दः जातवेदा देवता सायं सूर्यायार्घ्यदाने विनि० ॥ ॐ अयोजाला असुरा मायिनो यस्मयैः पाशैरंकिनो ये रचान्ति ॥ तास्तेरन्धयामिहरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान्प्रमृणन्पाहि वज्रः ॥ अथर्व ११। ६६।१ ॥ ॐ वरुणाय इदमर्घ्यं दत्तं न मम ॥

देवद्वेषी लोहेके जालवाले असुर कपटी, लोहेकी बनी हुई फाँशीयोसे फशानेवाले जे शत्रु विचरत है, हे सबके शुभाशुभ जाननेवाले अग्निरूप

वरुण! आपके तेजसे उनको मैं उपासक वशमें करता हूं, हजारों धारवाले वज्रसे शत्रुओंको मारता हुआ तू हमारी रक्षा करे ॥

फिर निम्नमंत्रोंसे उपस्थान करे ॥

ॐ उद्धेदाभि० । नव० । स न इन्द्र० । इति मंत्राणां सुक्षक ऋषिर्गायत्री छन्दः इन्द्रो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ॥ ॐ उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ॥ अस्तारमेषि सूर्य ॥ नवयोनवतिं पुरो विभेद बाह्वोजसा ॥ अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ स न इन्द्रः शिवः सखा श्वावद्गोमद्यवमत् ॥ उरुधारे वदोहते ॥ ऋग्० ८। ९३।१-२-३ ॥

हे श्रेष्ठ बलवान् इन्द्र! प्रसिद्ध धनवाले, मनोरथ पूर्ण करनेवाले, प्रजाके सुखके लिये वर्षा आदि कर्म करनेवाले, तथा श्रद्धालु उपासककी रक्षाके लिये सर्वत्रसे तू उदित होता है ॥ जिसने बाहुबलसे ९९ पुरियोंको नष्ट किया, और जिस वृत्रहन्ता इन्द्रने मेघका वध किया था सोही सुखकारी मित्र इन्द्र हमारे लिये बकरी, भेड, गौ, घोड़ा, तथा यवयुक्त धनको यथेच्छित दूधवाली गौके समान दूहे, सम्पादन करे ॥

फिर प्रातः संध्याके समान करे ॥

इति सायंसंध्या ॥

इति श्रीगुर्जरदेशान्तर्गतराजपीपलासंस्थाननिवासिस्वामिश्रीशंकरानन्दगिरिकृतभाषाटीकासमेता अथर्ववेदीय-त्रिकालसंध्या समाप्ता ॥

श्रीगायत्रीस्तोत्रम् ।

नारद उवाच ॥ भक्तानुकंपिन् सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम् ॥ गायत्र्या कथितं तस्माद्गायत्र्याः स्तोत्रमीरय ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि ॥ सर्वत्र व्यापिकेऽनंते श्रीसंध्ये ते नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥ त्वमेव संध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती ॥ ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा ॥ ३ ॥ प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत्पुनः ॥ वृद्धा सायं भगवती चिंत्यते मुनिभिः सदा ॥ ४ ॥ हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी ॥ ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः ॥ ५ ॥ यजुर्वेदं पठंती च अंतरिक्षे विराजते । सा सामगापि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि ॥ ६ ॥ रुद्रलोकंगता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी ॥ त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी ॥ ७ ॥ सप्तर्षिप्रीतिजननी माया बहुवरप्रदा ॥ शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा ॥ ८ ॥ आनंदजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते ॥ वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी ॥ ९ ॥ गरिष्ठा च वराहा च वरारोहा च सप्तमी ॥ नीलगंगा तथा संध्या सर्वदा भोगमोक्षदा ॥ १० ॥ भागीरथी मर्त्यलोके पाताले भोगवत्यपि ॥ त्रिलोकवाहिनी देवी स्थानत्रयनिवासिनी ॥ ११ ॥ भूर्लोकस्था त्वमेवासि धरित्री लोकधारिणी ॥ भुवर्लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः ॥ १२ ॥ महर्लोके महासिद्धिर्जनलोकेऽजनेत्यपि ॥ तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक् ॥ १३ ॥ कमला विष्णुलोके च गायत्री ब्रह्मलोकदा ॥ रुद्रलोके स्थिता गौरी हरार्धांगनिवासिनी ॥ १४ ॥ अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे ॥ साम्यावस्थात्मिका त्वं हि शबलब्रह्मरूपिणी ॥ १५ ॥ ततः परा परा शक्तिः परमा त्वं हि गीयसे ॥ इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा ॥ १६ ॥ गंगा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती ॥ शरयूर्देविका सिंधुर्नर्मदैरावती तथा ॥ १७ ॥ गोदावरी शतद्रुश्च कावेरी देवलोकगा ॥ कौशिका चंद्रभागा च वितस्ता च सरस्वती ॥ १८ ॥ गंडकी तपिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि ॥ इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना

च तृतीयका ॥ १९ ॥ गांधारी हस्तजिह्वा च पूषाऽपूषा तथैव च ॥ अलंबुषा कुहूश्चैव शंखिनी प्राणवाहिनी ॥ २० ॥ नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः ॥ हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कंठस्था स्वप्ननायिका ॥ २१ ॥ तालुस्था त्वं सदाधारा बिंदुस्था बिंदुमालिनी ॥ मूले तु कुंडलीशक्ति-व्यापिनी केशमूलगा ॥ २२ ॥ शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनो-न्मनी ॥ किमन्यद्बहुनोक्तेन यत्किंचिज्जगतीत्रये ॥ २३ ॥ तत्सर्वं त्वं महादेवि श्रिये संध्ये नमोऽस्तु ते ॥ इतीदं कीर्तिदं स्तोत्रं संध्यायां बहु-पुण्यदम् ॥ २४ ॥ महापापप्रशमनं महासिद्धिविधायकम् ॥ य इदं कीर्तयेत् स्तोत्रं संध्याकाले समाहितः ॥ २५ ॥ अपुत्रः प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धन-माप्नुयात् ॥ सर्वतीर्थतपोदानयज्ञयोगफलं लभेत् ॥ २६ ॥ भोगान्भुक्त्वा चिरं कालमंते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत् ॥ २७ ॥ यत्र कुत्र जले मग्नः संध्यामज्जनजं फलम् ॥ लभते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं च नारद ॥ २८ ॥ शृणुयाद्योपि तद्भक्त्या स तु पापा-त्प्रमुच्यते ॥ पीयूषसदृशं वाक्यं संध्योक्तं नारदेरितम् ॥ २९ ॥

इति श्रीगायत्रीस्तोत्रं संपूर्णम् ।

परिशिष्ट—प्रातःसूक्त—अग्निसूक्त-इन्द्रसूक्त-समेता
चतुर्वेदीयत्रिकालसंध्या समाप्ता.

विक्रय्य पुस्तकें

१ चतुर्वेदीयरुद्रसूक्तः—(हिंदी भाषाटीकासहित) इस ग्रंथमें [illegible] क्या अपूर्व वस्तु है उस विषयका विवरण किया गया है और [illegible] (रुद्र) ही सर्वोपरि प्राप्य वस्तु है ऐसा सिद्ध किया गया है। मू[illegible] रु. २—४—० पोष्टेज अलग।

२ वेदान्तसिद्धान्तरहस्यः—(हिंदी भाषाटीकासहित) इस [illegible] शिवका माहात्म्य, कल्पसृष्टि, कल्पप्रलय और महाप्रलयका [illegible], प्रजापति और सरस्वतीका समागमका विस्तारपूर्वक जानने योग्य निर्णय, अनेक देवोंका तात्पर्य, एकही परब्रह्म, पुरुषसूक्तका और देवताओंके स्वरूपोंका यथार्थ निर्णय, अनादि कालकी चार वर्णाश्रमोंकी उत्पत्ति, आर्योंका मूलनिवास, ऋषि, ऋषिपत्नी, और ऋषिपुत्रीओंका मंत्रद्रष्टृत्व, यवही एक आदि अन्न, अग्निहोत्रका वर्णन, चार आश्रमोंका धर्म और मोक्षका वर्णन, ब्रह्मा, अप्, और ऐसे दुसरे शब्दोंका अनेकार्थका वर्णन, वेदोंमें रहा हुआ अद्वैतवादका सिद्धान्त, ब्रह्मा और विष्णुका श्रुति-स्मृतिसिद्ध रहस्य, विष्णुकी नाभिसे ब्रह्माकी उत्पत्तिका तात्पर्य और श्रुतिके साथ स्मृतिओंका सिद्धान्तपूर्वक अनेक मननीय विषयोंका समावेश किया गया ह। मूल्य रु. १—४—० पोष्टेज अलग.

३ चतुर्वेदीयत्रिकालसन्ध्याः—(हिंदी भाषाटीकासहित) इस ग्रंथमें चारों वेदोंकी संध्या दी गई है और साथमें संध्यामें उपास्य देवका मननीय विषयरूप परिशिष्ट दीया गया है तथा नित्य द्विजातिओंके पठन करने योग्य प्रातःसूक्त, अग्निसू[illegible] तथा इन्द्रसूक्त भी दिया गया है। इसका परिशिष्ट अवश्य पढने योग्य है। मूल्य रु. ०—६—०।

इसकी दूसरी आवृत्ति थोडे दीनमें छपेगी। ८ आनेका स्टेम्प भेजनेसे पुस्तक पोष्टमार्फत भेजी जायगी, १० और जादा प्रत मगाने पर १० टका कमीशन दीया जायगा।

पुस्तक मिलनेका पत्ता—**स्वामी शंकरानंदगिरि,**

श्रेयःसत्र राजपीपला, वाया अंकलेश्वर (गुजरात).